योग और अध्यात्म की पुस्तकें

संसार-रहस्य अथवा अधःपतन (आध्यात्मिक उपन्यास)	१॥), २)
राजयोग अर्थात् मानसिक विकास ...	१॥), २)
योगशास्त्रांतर्गत धर्म	॥)
योगत्रयी	॥), १)
योग की कुछ विभूतियाँ	।।।), १)
जीवन-मरण-रहस्य	।=)
प्राणायाम	।।।=), १।=)
हृदय-तरंग	।)
भिखारी से भगवान्	१), १।)
कर्मयोग	॥), १)
सुख तथा सफलता	।)
अवतार-रहस्य	।।।)
अष्टोपनिषद्	२)
आत्मदर्शन	१)
आत्मस्थान-विज्ञान...	।-)
आत्मोपदेश	॥)
ईश्वरीय बोध	।।।)
उपनिषद्-प्रकाश	२।।।)

गंगा-पुस्तकमाला का १०९वाँ पुष्प

योग-दर्पण

लेखक

कन्नोमल एम्० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

प्रकाशक और विक्रेता

लखनऊ

सजिल्द १॥)] सं० १९८६ वि० [सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

ॐ

नास्ति मायासमं पापं नास्ति योगात्परं बलम् ।
नास्ति ज्ञानात्परो बन्धुर्नाहङ्कारात्परो रिपुः ॥ १ ॥
अभ्यासात्कादिवर्णानि यथा शास्त्राणि बोधयेत् ।
तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते ॥ २ ॥
सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्य्यैर्जायते प्राणिनां घटः ।
घटादुत्पद्यते कर्म घटीयंत्रं यथा भ्रमेत् ॥ ३ ॥
ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटीयंत्रं गवां वशात् ।
तद्वत् कर्म्मवशाज्जीवो भ्रमते जन्ममृत्युभिः ॥ ४ ॥
आमं कुम्भमिवाम्भस्थो जीर्यमाणः सदा घटः ।
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ५ ॥

(घेरंडसंहिता)

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम् ।
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥
पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

सूची

परिशिष्ट—

वाङ्मुखम्

भारतवर्ष अपने योग-बल और तत्त्व-ज्ञान द्वारा ही जगत् का गुरु था। ज्यों-ज्यों इसके योग-बल का ह्रास हुआ, इसके तत्त्व-ज्ञान की मात्रा घटी, त्यों-त्यों यह अपने उच्च पद से गिरता गया, और इसकी दशा शोचनीय होती गई। यदि भू-मंडल की सभ्य जातियों के ऊपर भारत अपने गौरव और महत्त्व का सिक्का फिर जमाना चाहता है, और आध्यात्मिक तथा भौतिक स्वराज्य प्राप्त करना चाहता है, तो वह अपने तत्त्व-ज्ञान और योग-शास्त्र की शरण फिर ले, और उनका समुचित अध्ययन, परिशीलन और अभ्यास कर भौतिक सभ्यता-मदांध जातियों पर अपने नेतृत्व की शंख-ध्वनि फिर कर दे।

योग-शास्त्र भारत की एक अद्भुत, अमूल्य, अनूठी एवं अनुपम संपत्ति है। यह संपत्ति संसार की किसी भी अन्य जाति को प्राप्त नहीं—योग-विषयक आविष्कार कभी किसी और जाति ने नहीं किए। भौतिक संसार के जिन रहस्यों को पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अविराम परिश्रम, अगणित धन-व्यय और अदम्य उत्साह से सीखा है, उनसे कहीं बढ़े-चढ़े प्राकृ-

तिक रहस्यों का उद्घाटन हमारे ऋषि-मुनियों ने योग द्वारा किया था। उनकी विजय पंचभूतों पर ही नहीं हो गई थी, बल्कि समस्त सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विषयों पर भी। उन्हें योग-साधनों द्वारा भूत-भविष्यत् का ज्ञान था, वे सब प्राणियों की बोलियाँ समझते थे, पूर्व-जन्मों का हाल जानते थे, दूसरों के चित्त की बात जान लेते थे, आकाश में रुई के समान हलके होकर उड़ सकते थे, अदृष्ट हो सकते थे, मृत्यु के आने का ज्ञान कर लेते थे, सिंह, हाथी तथा वायु के समान बलवान् हो जाते थे। सूक्ष्म, गुप्त और दूर स्थानों का बैठे-बैठे ही हाल जान लेते थे, समस्त भुवनों तथा तारा-व्यूहों का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे, क्षुधा-पिपासादि पर विजय प्राप्त किए हुए थे। अंततः संसार की कोई ऐसी वस्तु नहीं थी—प्राकृतिक जगत् तथा आध्यात्मिक विश्व की कोई ऐसी शक्ति नहीं थी—जो उन्हें प्राप्त न हो। क्या वर्तमान युग में सभ्यता की डींग मारनेवाली पाश्चात्य जाति ने इतनी उन्नति कर ली है? क्या उसने इन विभूतियों पर अपना अधिकार जमा लिया है? इन अलौकिक चमत्कारों के सामने तो पाश्चात्य आविष्कार कुछ भी नहीं हैं। क्या जड़-वादी पश्चिम अध्यात्म-वादी पूर्व की बराबरी कर सकता है?

पाठक कहेंगे, लेखक ने ये कोरी गप्पें मार दी हैं। ये शब्दा-डंबर परिच्छिन्न कपोल-कल्पनाएँ हैं, इनमें तथ्य का कुछ भी अंश नहीं। यदि है, तो क्या प्रमाण है ? इसके उत्तर में मैं पाठकों का ध्यान योग-दर्शन के विभूतिपाद की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस पाद में इन सब शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के साधन लिखे हैं। यदि योग्य और अनुभवी योगी को गुरु बनाकर इन साधनों का अभ्यास किया जाय, तो कोई कारण नहीं कि जो कुछ अतीत काल में संभव था, वह अब असाध्य हो। इन शक्तियों का आविर्भाव अब भी हो सकता है।

संभव है, पाठकों को इस पर भी विश्वास न हो; इसलिये और भी कुछ कहना आवश्यक है। सुनिए। पहले तो सभी भारतीय महान् पुरुषों का कथन है कि योग-शास्त्र सच्चा है। वेद-पुराण-उपनिषत्, दर्शन-शास्त्र, स्मृति-शास्त्र, संहिता आदि सभी ग्रंथों में योग की महिमा गाई गई है। इन सब ग्रंथों के द्रष्टा और रचयिता, जिनके वाक्य हमारे लिये आप्त वचन हैं, मुक्तकंठ से योग की प्रशंसा करते हैं, और उससे प्राप्य शक्तियों और सिद्धियों को सत्य समझते हैं। दूसरे बहुत-से लब्ध-प्रतिष्ठ पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपनी पुस्तकों में भारतीय योगियों के शक्ति-प्रदर्शन का हाल लिखा

है। मैक्समूलर साहब की षड्दर्शन-नामक पुस्तक देखिए। मैक्ग्रीगर-लिखित सिख-इतिहास, हैनिग बर्जर साहब का भ्रमण-वृत्तांत, तथा अन्यान्य समाचार-पत्र और मासिक पत्रिकाओं के लेख देखिए। एक वर्ष के लगभग हुआ, जब हमने एक समाचार-पत्र में पढ़ा था कि पंजाब में एक योगी ने अपना काया-पलट किया है। वह स्वयं वृद्ध था, लेकिन एक नवयुवक के मृत शरीर में चला गया। यह हाल की ही बात है। हमारे एक मित्र, जो बहुत दिनों तक अजमेर में रहे थे, कहते हैं, वहाँ सत्यराम नाम के एक दादू-पंथी साधु थे, जिन्हें कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं। उन्होंने एक समय एक योगी को बड़े वेग से आकाश में उड़ता देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह अपने गुरु के पास जा रहा था, जो हिमालय पर्वत पर शीघ्र ही शरीर छोड़नेवाले थे। उस योगी ने यह भी बताया कि जिस दिन उसके गुरु का शरीर छूटेगा, उस दिन बड़े ज़ोर से जल बरसेगा, और आँधी चलेगी। दो दिन बाद ही बड़े ज़ोर की आँधी चली, और मूसलधार वर्षा हुई। दूसरे दिन समाचार-पत्रों में पढ़ने से मालूम हुआ कि पूर्वी और पश्चिमी मानसून आपस में टक्कर खा गई, और इसका परिणाम यह अतिवृष्टि की घटना थी! इस समय भी हम ग्वालियर-राज्य के किसी सूबे में लोचन-

दास नाम के साधु की महिमा सुनते हैं। आपके विषय में कहा जाता है कि आपने एक गृहस्थ के मरे हुए लड़के को पुनर्जीवित कर दिया था। भारतवर्ष में कहीं-कहीं अब भी ऐसे साधु-महात्मा हैं, जिन्हें योग-बल प्राप्त है। ये लोग खोजने पर ही मिलते हैं। जिन पाश्चात्य महाशयों ने भारतीय योगियों की प्रशंसा लिखी है, उन्होंने खूब छान-बीन कर ली थी। उन्होंने अकाट्य प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर अपने लेख लिखे हैं। जिन घटनाओं को उन्होंने अपने नेत्रों से सावधानी से देखा है, उन्हीं का उल्लेख किया है। यदि आप भारतीय महान् पुरुषों के कथन को सत्य नहीं मानोगे, तो इन अँगरेजों के लेखों को तो सत्य समझोगे; क्योंकि आजकल जिस बात को गोरे चमड़ेवाले जोर देकर कह देते हैं, वह अवश्य ही विश्वसनीय और सत्य समझी जाती है।

तीसरे आपसे ही प्रश्न है कि क्या आपने योग-साधनों की जाँच की है, और वे आपकी जाँच में निरर्थक निकले हैं? यदि आपने न तो स्वयं जाँच की है, और न आप दूसरों की बात को मानते हो, तो बताइए, हम आपके कथन को क्यों ब्रह्मवाक्य समझें? आपका यह कहना कि योग-शास्त्र कोरा आडंबर है, किस तरह प्रमाण-रूप समझा जाय?

यह भौतिक विज्ञान का सत्ययुग है। इसमें प्रकांड वैज्ञानिक पंडित प्रकृति के रहस्यों की खोज में नए ढंग से लगे हैं। इनके अनुसंधानों के उपाय बाहरी हैं, आंतरिक नहीं, जैसे हमारे ऋषि-महर्षियों के थे। तब भी इनके प्रयत्न सराहनीय हैं। यदि इनमें से कोई विद्वान् अपने उस समय का अर्द्ध-भाग लगाकर और उस धन का चतुर्थांश भी व्यय करके, जो वह साधारण प्राकृतिक विज्ञान-प्रयोगों (Experiments) में लगाता है, योग-शास्त्र के रहस्यों की जाँच करे, तो आशा है, हमारे ऋषि-महर्षियों के कथन सत्य उतरें, और भारतीय विषयों के संबंध में जो विश्वव्यापी अविश्वास फैल रहा है, वह दूर हो जाय। यदि इन विद्वानों के जाँच करने पर योग-साधनों में कुछ भी तथ्य न निकले, तो कम-से-कम कहने को अवसर तो मिले कि यह सब ढकोसला है, स्वार्थी ब्राह्मणों ने संसार को धोका देने तथा अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये ये सब ऊट-पटाँग बातें लिख डाली हैं। अभी तो ऐसा कहने का मौक़ा ही नहीं आया। जाँच किए बिना ही और विश्वसनीय पुरुषों के आप्त वचनों को न मानकर तत्त्व-ज्ञानी भारतीय ऋषि-मुनियों के शास्त्रों को झूठा कहना या उनमें विश्वास न करना वैसा ही है, जैसे कोई मूर्ख यह कहे कि मेरे सकलदादा थे ही नहीं, अथवा यह कहे कि

लंदन नगर है ही नहीं, अथवा समुद्र पर भारी लोहे के जहाज़ तैर ही नहीं सकते, या विना तार के तार जा ही नहीं सकता।

हम जानते हैं कि पराधीन जाति की कोई वक़त नहीं है। उसका धर्म, उसका ज्ञान, उसका साहित्य, उसका इतिहास, उसकी सभ्यता, उसकी मान-मर्यादा, उसके आविष्कार एवं उसके सभी उच्च कार्य कुछ नहीं समझे जाकर तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं। हमारी अधोगति की भी कुछ सीमा है। यदि जड़-वादी नवीन सभ्यता-मदांध पाश्चात्य जाति, जिसे एशिया की जीर्ण-शीर्ण असभ्य जातियों पर विजयी होने का घमंड है, किसी पराजित, पराधीन, पद-दलित जाति के साहित्य और ज्ञान का उपहास करे, तो करे। उसके गंभीर दार्शनिक सिद्धांतों को झूठा बतावे, तो बतावे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर जब भारतीय शिक्षित पुरुष, जिनकी कुल शिक्षा अँगरेज़ी-शिक्षा की नक़ल है, और जिनका समस्त ज्ञान विदेशीय साहित्य की भूमि से उत्पन्न हुआ है, भारतीय अटल सिद्धांतों को विना पढ़े और जाँच किए अविश्वास की और तिरस्कार की दृष्टि से ही न देखें, बल्कि उनके पठन-पाठन में जो समय लगे, उसे व्यर्थ गया हुआ समझें, और अपनी संतानों को अपने पूर्वजों की विद्या पढ़ने से रोकें, तो समझिए कि हमारे

दुर्भाग्य, हमारी दुर्दशा और हमारी गुलामी की परा काष्ठा हो गई।

भारतवर्ष में हजारों स्कूल, पाठशालाएँ और कॉलेज हैं, कितने ही विश्वविद्यालय हैं। इनमें एक आध जातीय विश्वविद्यालय होने का दावा भी करता है। पर क्या कोई कह सकता है कि इनमें से एक में भी भारतीय तत्त्व-ज्ञान तथा परमावश्यक योग-सिद्धांतों को सिखाने का प्रबंध है? धर्म-पुस्तकें तथा अन्य दर्शन-शास्त्रों के विषय में यदि कहा जाय कि उनके पढ़ने से क्या लाभ है, वे पुरानी बातों के पुंज हैं, उनके परिशीलन से कोई तत्काल फल नहीं मिलता, उनके पढ़ने में समय लगाना समय का दुरुपयोग करना है, तो इस कथन से आपकी दुर्बुद्धि, अनभिज्ञता, देश-भक्ति-शून्यता और जातीय भावों के प्रति उदासीनता का पता तो लगता है, पर उससे आपकी इतनी हानि नहीं होती, जितनी इस कहने से कि योग-साधन एक अनावश्यक, रद्दी चीज़ है, वह तात्कालिक उपयोगी नहीं है, और उसका अभ्यास व्यर्थ है। सुनिए, यदि कोई विद्या ऐसी है, जिसका तत्काल ही फल निकले, जिसका तुम्हारे जीवन से घनिष्ठ संबंध है, जो तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा को सुख पहुँचा सकती है, और तुम्हें नीरोग और हो सके तो अमर बनाने का दावा करती है, तो वह योग-विद्या ही

है। योग-विद्या सार्वभौमिक विद्या है। इसमें किसी देश, किसी जाति, किसी धर्म के बंधन नहीं हैं। यह सभी के लिये है। योग आपको कोरी परलोक की बातें बताकर मन-समझौता नहीं करता। वह आपको जटिल मानसिक प्रश्नों की उलझन सुलझाने को नहीं कहता। वह आपको कोरी पाठ-पूजा में लगाकर यह नहीं कह देता कि इसका फल परलोक में मिलेगा। योग कोरा वितंडावाद नहीं है। वह है एक अत्यंत प्रायोगिक विद्या, जिसके सीखते ही फल-सिद्धि की आशा बँध जाती है। भवन-निर्माण-कला, संगीत, शिल्प, चित्र-लेखन-कला आदि के समान वह भी तत्काल फल देने-वाली एक कला है। यदि आप स्कूल-कॉलेजों में लड़कों को तरह-तरह के व्यायाम, खेल तथा सैनिकों को शस्त्र-विद्या सिखाने से कोई लाभ समझते हों, तो इससे दसगुना लाभ इन्हें योग-साधन सिखाने से समझिए। पूर्वोक्त क्रियाओं से तो केवल शारीरिक बल और स्वास्थ्य की कुछ वृद्धि होती है, लेकिन योग-साधनों के सीखने और अभ्यास करने से शरीर, मन और बुद्धि, इन तीनो की शक्तियों का विकास होता है, जिससे आपकी स्वास्थ्य-वृद्धि, नीरोगता, दीर्घायुता ही नहीं होती, बल्कि आपका उन मानसिक शक्तियों पर अधिकार हो जाता है, जिनके द्वारा आप घर-बैठे सब जगह का हाल

जान लो, अन्य देशों के रमणीक दृश्य देख लो, संगीत-शालाओं के मधुर गान सुन लो, देव-वन-वाटिकाओं के पुष्पों की सुगंध सूँघ लो, नाना प्रकार के अन्य स्थानीय पदार्थों का स्वाद चख लो, और उष्ण देश में बैठे शीत देश की शीतल समीर का स्पर्श कर लो।

योग करनेवाले को आठो सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं, और ये सिद्धियाँ कोई सामान्य वस्तु नहीं हैं। सुनिए—

अणिमा सिद्धि से आप परमाणु के समान छोटे बन सकते हो।

लघिमा से रुई के समान हलके बन सकते हो।

महिमा से बड़े-से-बड़े हो सकते हो।

प्राप्ति से आप चंद्रमा तक को उँगली के अग्र-भाग से छू सकते हो।

प्राकाम्य से आप जो चाहो वही कर सकते हो—आपकी इच्छा पूरी होने में कोई रुकावट न रहेगी। यदि आप यह चाहो कि जैसे जल में गोता लगाते हैं, वैसे ही पृथिवी में गोता लगावें, तो आप यह भी कर सकते हो।

वशित्व से पंचभूतों और पंचभूत-निर्मित सब पदार्थों पर जय प्राप्त कर सकते हो। ये सब वस्तुएँ आपके वश में हो जायँगी।

इशित्व से आप पंचभूत और भौतिक पदार्थों के प्रकट होने, छिप जाने और संग्रह होने पर पूर्ण अधिकार जमा सकते हो।

कामावसायित्व से आप इच्छानुसार पंचभूतों का रूप धारण कर सकते हो।

भारतवासियों से मेरा सविनय अनुरोध है कि वे इस विद्या को अपने हाथ से न जाने दें, और इसे अपने विश्व-विद्यालयों में स्थान दें। हमारे भारतीय भाई ल्यूकोनी के पानी के इलाज को बड़ी उच्च दृष्टि से देखते हैं, और उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं; पर उन्हें यह नहीं मालूम कि यह इलाज योग-क्रियाओं की पहली सीढ़ी में से है। यह शौच-साधनों में से प्रक्षालन और वस्ति, धौति की नक़ल है (परिशिष्ट ३ देखो)। इन शोधन-साधनों में तो ऐसी-ऐसी बातें हैं, जो ल्यूकोनी को मालूम भी न थीं, और न किसी भारतीय गुरु के सिखाए बिना उसे मालूम हो सकती हैं।

मेस्मरिज्म, हिपनोटिज्म, स्पिरिटसीइंग आदि प्रयोग और दृश्य जो संप्रति योरप में भी सच्चे माने गए हैं, योग की प्रारंभिक बातें हैं।

हमें खेद इस बात का है कि अगर सरकारी स्कूलों और

कॉलेजों में योग-शिक्षा को स्थान न मिले, तो कोई आश्चर्य नहीं, लेकिन हमारी जातीय और राष्ट्रीय पाठशालाओं और विद्यालयों में, जिनमें इसका होना परमावश्यक है, उसका अभाव है और यह अभाव बहुत खटकता है। यह कितनी शोचनीय बात है कि जो शिक्षालय जातीय होने का दावा करें, उनमें योग-शिक्षा को स्थान न मिले ! योग से अधिक जातीय वस्तु कौन-सी है, क्या कोई बता सकता है ? यह विद्या उपेक्षा, तिरस्कार और लापरवाही करने योग्य नहीं है। यह बड़े काम की है और तत्काल फल देनेवाली है। इसे खूब मन लगाकर पढ़ना और सीखना चाहिए, और इसका प्रचार जितना हो सके, किया जाय। हम पराधीन भारतवासियों को स्वास्थ्य, नीरोगता और शारीरिक बल की ही आवश्यकता नहीं है, बल्कि मानसिक बल, आध्यात्मिक शक्ति और मोक्ष तक की आवश्यकता है। हमारे चार परम पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। इन चारो का साधन योग द्वारा ही हो सकता है। अतः योग-शिक्षा हमारे और हमारी संतानों के लिये नितांत आवश्यक है। इस पुस्तक के पढ़ने से यदि किसी को भी लाभ और योग का प्रचार हुआ, तो मेरे लिखने का परिश्रम सफल होगा।

योग-दर्पण पातंजल योग-सूत्रों, श्रीव्यास-भाष्य और

वाचस्पति मिश्र की वृत्ति के आधार पर लिखा गया है। इस-की भूमिका में मैंने उन सभी बातों के समावेश की चेष्टा की है, जो योग-दर्शन से संबंध रखती हैं, और जो आधुनिक गवेषणा से मालूम हुई हैं। इस विषय पर पाश्चात्य तथा प्राच्य पंडितों ने जो कुछ खोज कर लिखा है, उसका भी सूक्ष्म उल्लेख कर दिया है। ये सब बातें भूमिका पढ़ने से ही मालूम होंगी। पुस्तक के अंत में ८ परिशिष्ट लगे हैं, जिनमें योग-सिद्धांत पूर्ण रीति से समझने के लिये पर्याप्त सामग्री है। जो बातें पुस्तक की भूमिका और उसके प्रधान भाग में वर्णित नहीं हैं, वे परिशिष्टों में दी हुई हैं। मैंने पुस्तक को सर्वांग-पूर्ण बनाने की चेष्टा की है; लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे इस कार्य में सफलता प्राप्त हुई है या नहीं। मेरा कर्तव्य था, सो मैंने कर लिया। इसका क्या और कैसा फल होगा, यह ईश्वर ही जाने। श्रीभगवान् कृष्णजी ने ठीक ही कहा है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

मेरा विचार भारतीय दर्शन-शास्त्रों पर एक माला लिखने का है। यह उस माला का पहला पुष्प है, जिसे मैं सश्रद्धा और सविनय हिंदी-संसार को भेंट करता हूँ। यदि यह तुच्छ

भेट स्वीकृत हुई, तो मुझे माला में अन्य पुष्प शीघ्र ही गूथने का साहस होगा।

धौलपुर,
आषाढ़ कृष्ण १४ सं० १९८६ } कन्नोमल

भूमिका

योग का अर्थ

योग-शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में जोतने, लगाने, मेल करने आदि अर्थों में हुआ है। शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यकोपनिषत् में भी इसका प्रयोग कुछ ऐसे ही अर्थों में हुआ है। इससे युज्य-शब्द भी बना है, जो छांदोग्य, बृहदारण्यकादि उपनिषदों तथा शतपथ ब्राह्मण में भी आया है। कठोपनिषत् के देखने से ज्ञात होता है कि पहले योग-शब्द रथ के घोड़ों को वश में रखने के अर्थ में आया, फिर उसका प्रयोग इंद्रियों को वश में करने के अर्थ में हो गया। पाणिनि के मतानुसार युज् धातु से योग-शब्द का अर्थ ध्यान अथवा समाधि है— 'युज् समाधौ'। युजिर् धातु से योग-शब्द का अर्थ जोड़ना, संबंध करना, मिलाना आदि है। युज् धातु पहले अर्थ में क्रिया के रूप में बहुत कम आती है। श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के ४८वें श्लोक में योग का अर्थ समत्व है। वास्तव में योग का अर्थ ध्यान या समाधि है। कुछ लोगों के मत में ईश्वर और जीव का मेल ही योग है। यह बात वेदांत और सांख्य-सिद्धांतों के विरुद्ध है। जीव अथवा

आत्मा का ब्रह्म में लीन होना, इन दोनो सिद्धांतों के विरुद्ध है। आत्मा और माया अथवा पुरुष और प्रकृति, इनका पारस्परिक संबंध नष्ट कर देना ही उनका उद्देश्य है। इन दोनो का पृथक्-पृथक् हो जाना ही मुक्ति या कैवल्य है। योग-सूत्रों के वृत्तिकार भोजदेव का भी यही मत है। वह कहते हैं, पुरुष-प्रकृति में विवेक तथा पुरुष का प्रकृति से वियोग ही कैवल्य है। सांख्य-मत से यह वियोग विवेक द्वारा साध्य है, और योग-दर्शन के मत से अष्टांग योग-साधनों द्वारा। जब यह लक्ष्य है, तो योग का अर्थ मेल कैसे हो सकता है? महर्षि पतंजलि ने तो अपने योग-दर्शन के दूसरे सूत्र में इस शब्द की स्पष्ट परिभाषा दे दी है। इसके होते योग-शब्द के अर्थ के विषय में झगड़ा करना कोरा विवाद है। देखिए—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना योग है, जो दूसरे शब्दों में ध्यान या समाधि है। योग-सूत्रों पर भाष्यकार वेदव्यास और वृत्तिकार वाचस्पति मिश्र का भी यही मत है। अतः योग का अर्थ है चित्त-वृत्तियों को रोकना अथवा समाधि लगाना।

योग की प्राचीनता

भारतवर्ष में योग-सिद्धांत अत्यंत प्राचीन है। योग का उल्लेख बड़े-बड़े प्राचीन और प्रामाणिक ग्रंथों में है। देखो

छांदोग्योपनिषत्, प्रपा० ३, खंड २, प्रपा० ८ खंड १५ ; मैत्रायण उपनिषत्, श्वेताश्वरोपनिषत्, कठोपनिषत्, वेदांतसूत्र २ अध्याय, १-३ ; सांख्यसूत्र, भगवद्गीता ४ अध्याय, श्लोक १, ३ । दूसरे उपनिषत्, जिनमें योग-सिद्धांत की प्रधानता है, निम्न-लिखित हैं—शांडिल्योपनिषत्, योगतत्त्वोपनिषत्, ध्यानबिंदूपनिषत्, हंसोपनिषत, अमृतानन्दोपनिषत्, वराहोपनिषत्, मंडलब्राह्मणोपनिषत्, नादबिंदूपनिषत, योगकुंडली उपनिषत् । कौटिल्य मुनि ने भी अपने अर्थशास्त्र में योगशास्त्र का पढ़ना राजा के लिये आवश्यक समझा है । महात्मा बुद्ध योग-सिद्धांतों से भली भाँति परिचित थे । उन्होंने स्वयं भी योग-साधन किए थे । बौद्धों के एक सबसे प्राचीन सूत्रग्रंथ में योग का उल्लेख है । इन सब प्रमाणों के रहते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि योग-सिद्धांत बौद्ध-काल के पीछे का है, अथवा आधुनिक है । प्राचीन ग्रंथों से यह भी विदित है कि योग-क्रियाएँ अनेक प्रकार की थीं । योग-तत्त्वोपनिषत् में चार प्रकार का योग लिखा है—मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग । श्रीमद्भगवद्गीता में भी कई प्रकार के योग-साधनों का उल्लेख है । धर्मशास्त्रों के देखने से भी यही पता चलता है । यह भी ज्ञात होता है कि पीछे से योग तंत्रों के रूप में हो गया था ।

क्या महर्षि पतंजलि योग-सिद्धांत के आद्य-आचार्य हैं ?

यह बात नहीं है । योग-सिद्धांत के प्राचीन आचार्य हिरण्यगर्भ, वार्षगण्य, याज्ञवल्क्यादि थे । पतंजलि मुनि योग-शास्त्र के संपादक हैं, जिन्होंने प्राचीन योग-सिद्धांतों का संग्रह करके क्रम-बद्ध योगदर्शन-नामक ग्रंथ लिखा है । इनके विषय में सविस्तर वर्णन आगे है ।

सांख्य और योग का संबंध

इस विषय में दो मत हैं । एक तो यह है कि सांख्य और योग प्राचीन काल से सम्मिलित हैं, और दोनो एक ही हैं, इनमें अंतर नहीं है । और, दूसरा मत यह है कि प्राचीन काल में योग-साधन पृथक्-पृथक् थे । सांख्य-सिद्धांत से कोई संबंध नहीं रखते थे । सांख्य और योग का मेल पीछे हुआ है । यदि यह कहा जाय कि इस मेल को पतंजलि मुनि ने किया है, तो अत्युक्ति न होगी । पहले मतवाले अपने समर्थन में निम्न-लिखित प्रमाण देते हैं—

महाभारत १२ पर्व, श्लोक ६७,१०४

श्वेताश्वश्वतरोपनिषत् २, १३,

भगवद्गीता ५ वाँ अध्याय, श्लोक ४-५

भगवद्गीता के इन श्लोकों में कहा है कि पंडित लोग सांख्य

और योग में अंतर नहीं समझते । एक के करने पर दोनो का फल मिलता है । जो स्थान सांख्य को प्राप्य है, वह योग को भी । वही पंडित है, जो इन दोनो में कुछ भी अंतर नहीं देखता ।

दूसरे पक्षवाले कहते हैं कि श्वेताश्वतरोपनिषत् तथा कठोपनिषत् में सांख्य-विचारों का भी उल्लेख है ; पर ये क्रम-बद्ध नहीं हैं, और न इनका संबंध योग-विषय से विधि-पूर्वक स्थापित है । पहले प्रकरण में जिन उपनिषदों का ज़िक्र किया है, उनमें योग-सिद्धांत का सांख्य-विचारों से कुछ भी संबंध नहीं । उनका झुकाव शैव और शाक्त-मतों की ओर है, और वे मंत्र-योग के रूप में हैं । पतंजलि मुनि ने प्राचीन योग-सिद्धांतों को अपने योग-दर्शन में सांख्य के दार्शनिक विचारों पर अवलंबित कर दिया है । यदि सांख्य और योग में समता दृष्टिगोचर होती है, तो वह पतंजलि मुनि की की हुई है । दोनो मतों का यही सारांश है, पर निश्चित रीति से यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें कौन-सा मत ठीक है । प्रमाण दोनो ओर हैं । तथापि यह कहना कि सांख्य और योग के एक होने के प्रमाण प्रबल हैं, असंगत न होगा । मेरी सम्मति में तो इन दोनो सिद्धांतों का अत्यंत प्राचीन काल से मेल है । भगवद्गीता में इस मेल पर बहुत ज़ोर दिया है, और यह बात है भी यों ही ।

पतंजलि

योगसूत्र-रचयिता पतंजलि और महाभाष्यकार पतंजलि एक हैं या दो ? प्राचीन संस्कृत-साहित्य में कई पतंजलियों का उल्लेख है। एक पतंजलि तो योगदर्शन के रचयिता हैं, दूसरे पाणिनि की व्याकरण के महाभाष्यकार, तीसरे वैद्यक ग्रंथ राज-मृगांक के कर्ता, चौथे पातंजल-तंत्र के रचयिता, पाँचवे बृहदारण्योपनिषद् के काप्य पातंजल, और छठे किताब पातंजल के कर्ता जिनका उल्लेख अलबरूनी ने किया है और उस पुस्तक का अनुवाद भी किया है। प्रश्न यह है कि ये सब पतंजलि एक ही हैं या पृथक्-पृथक्। यह बात तो निश्चित है कि बृहदारण्योपनिषद् के काप्य पातंजल कोई अन्य पुरुष थे। वह न तो योगशास्त्र के रचयिता हैं और न महाभाष्य के। पातंजल-तंत्र और किताब पातंजल के कर्ता एक ही मालूम होते हैं, पर इसका कोई प्रबल प्रमाण नहीं हैं। रहे अब योगदर्शन, महाभाष्य और राजमृगांक के कर्त्ता, तो इनके विषय में दो मत हैं। एक पक्ष के लोग तो कहते हैं कि ये तीनो ग्रंथ एक ही पतंजलि के लिखे हैं, और दूसरे पक्षवालों का कथन है कि इनके लेखक तीन पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं।

पहले पक्ष में निम्न-लिखित प्रमाण हैं—

१ रामभद्र दीक्षित का पतंजलि-चरित, जो १८वीं शताब्दी का लिखा मालूम होता है।

२ वासवदत्त पर शिवराम की टीका जिसमें पतंजलि का नाम आया है, और यह टीका भी १८ वीं शताब्दी की लिखी हुई है।

३ धार के राजा भोज, जिन्होंने योगदर्शन पर वृत्ति लिखी है और जो ११वीं शताब्दी की कही जाती है, यही लिखते हैं।

४ चक्रपाणिदत्त का चरक पर भाष्य जो ११वीं शताब्दी का है।

५ योगशास्त्र के पढ़ानेवालों में परंपरा चली आई है कि जब कोई शिष्य योगदर्शन पढ़े, तो पहले नीचे-लिखे श्लोक को कहे, जो शांतिवाचक समझा जाता है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनाम्
पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोस्मि॥

इसका यह आशय है कि मैं उस पतंजलि को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने योगशास्त्र द्वारा चित्त के, व्याकरण-भाष्य द्वारा वचन के और वैद्यक ग्रंथ द्वारा शरीर के दोषों की शुद्धि कर दी है।

६ कात्यायन की वेदानुक्रमणिका के भाष्य में षड्गुरु शिष्य-जी ने भी यही बात मानी है।

७ महाभाष्य में कितने ही वैद्यक-शास्त्र-संबंधी वाक्य आए हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि महाभाष्य और वैद्यक ग्रंथ लिखनेवाले पतञ्जलि एक ही हैं।

८ स्फोटवाद का प्रतिपादन महाभाष्य और योगसूत्र, दोनो में है।

९ सांख्य-शास्त्रीय विचार महाभाष्य और योगसूत्र दोनो में है।

१० महाभाष्य का पहला वाक्य और योगदर्शन का पहला वाक्य एक-सा है। महाभाष्य का आदि-वाक्य है—"अथ शब्दानुशासनम्, और योगसूत्रों का पहला वाक्य है—"अथ योगानुशासनम्"। इन दोनो में बहुत कुछ समता है, और एक ही लेखक के लिखे हुए मालूम होते हैं।

दूसरे पक्षवालों की निम्न-लिखित युक्तियाँ हैं—

१ योगसूत्रों पर वेदव्यास-भाष्य है। वेदव्यासजी पाणिनि से बहुत पहले हुए हैं, और महाभाष्य पाणिनि के २०० वर्ष पीछे लिखा गया है। इसलिये योगदर्शन के लेखक और महाभाष्य के लेखक एक नहीं हो सकते।

२ महाभाष्य, कात्यायन-वार्तिकों पर बना है। इन वार्तिकों में योगशास्त्र के अनेक शब्दों तथा पतंजलि का भी उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि योगदर्शन-रचयिता

पतंजलि कात्यायन से पहले हुए और महाभाष्यकार पीछे।

३ बृहदारण्योपनिषद् में काप्य-पातंजल का उल्लेख है। वह योगाचार्य थे, और वैयाकरण पतंजलि बहुत पीछे के हैं।

४ श्वेताश्वतर, गर्भ, निरालंब, योगशिखा, योगतत्त्वादि उपनिषदों में योग की भली भाँति चर्चा है, और ये सब ग्रंथ बहुत प्राचीन हैं। वैयाकरण पतंजलि का समय ईसा से २०० वर्ष पहले से १०० वर्ष पीछे तक का बताया गया है। इससे सिद्ध है कि यह कोई दूसरे पतंजलि थे।

५ महाभाष्य में मौर्यों का ज़िक्र है और मौर्य चंद्रगुप्त के समय के हैं। जिससे यह पता लगता है कि भाष्यकर चंद्रगुप्त मौर्य के समय में हुआ था।

६ महाभाष्य में साकेत (अवध) तथा माध्यमिकों पर यवनों पर आक्रमण का उल्लेख है। 'यवन'-शब्द यूनानियों के लिये आता है, और माध्यमिक बौद्धों के लिये। इतिहास से मालूम होता है कि ईसा से १०४ वर्ष पहले मीनेंडर नाम के एक यूनानी राजा ने अवध पर आक्रमण किया था। माध्यमिक लोग नागार्जुन के अनुयायी थे, जो ईसा से ७७-४३ वर्ष पहले हुआ। इन दोनो बातों से अनुमान होता है कि महाभाष्य इस समय का लिखा है।

७ महाभाष्य में चंद्रगुप्त सभा (३२७ ईसा से पूर्वकाल), 'पुष्य-मित्रसभा' और पुष्यमित्र के यज्ञ का उल्लेख है। पुष्यमित्र शुंग-वंशीय राजा था, जिसका समय ईसा से १७८ वर्ष पहले का है। इससे भी मालूम होता है कि महाभाष्यकार इस समय में हुए।

८ राजतरंगिणी में लिखा है कि अभिमन्यु राजा के समय यानी सन् ४० में छंदाचार्य ने महाभाष्य को काश्मीर-देश में प्रचलित किया, और यह इस समय से ३०० वर्ष पहले का है।

९ Hiouen Thsang (ह्यूंथसंग) लिखते हैं कि कात्यायन सन् ईसवी से २४० वर्ष पहले हुआ था, और पतंजलि ने उसका हवाला अपने महाभाष्य में दिया है। इसलिये पतंजलि सन् ईसवी से २०० वर्ष पहले हुआ।

१० योगसूत्रों के चौथे अध्याय में बौद्ध-शास्त्रीय मत का खंडन है। इसलिये योगसूत्र बौद्ध-धर्म के पीछे के लिखे हुए हैं।

११ ब्रह्मसूत्रों में बादरायण ने योग का खंडन किया है। इससे यह सिद्ध है कि पतंजलि बादरायण से पहले हुए; पर पाणिनि ने ब्रह्मसूत्रों तथा उसके रचयिता पाराशर्य (बादरायण) का उल्लेख किया है। इसलिये पाणिनि बादरायण के पीछे हुए और पतंजलि महाभाष्यकार तो और भी पीछे।

अब इन युक्तियों का थोड़ा खंडन भी सुन लीजिए—

१ व्यास कई हुए हैं, और यह निश्चय नहीं है कि पहले व्यास हुए या पाणिनि। पाणिनि में पतंजलि का कोई उल्लेख नहीं है।

२ यह कोई दूसरे पतंजलि होंगे।

३ यह भी कोई अन्य पतंजलि मालूम होते हैं; क्योंकि उपनिषदों में तो याज्ञवल्क्य ही योगाचार्य कहे गए हैं।

४ यह पातंजल योग नहीं है, बल्कि याज्ञवल्क्य तथा हिरण्यगर्भ-प्रतिपादित योग है; क्योंकि इन उपनिषदों में पतंजलि का नाम कहीं नहीं आया।

५ यह चंद्रगुप्तीय मौर्य जाति नहीं है, बल्कि भिक्षा-व्रत करनेवाली एक जाति थी, जो मूर्ति-पूजन करती थी, और चंद्रगुप्त के वंश के लोग बौद्ध थे।

६ 'यवन'-शब्द यूनानियों के लिये ही संकुचित नहीं है। यह शब्द संस्कृत-साहित्य में सभी विदेशीयों के लिये आया है। ये बौद्धानुयायी माध्यमिक नहीं थे, बल्कि मध्य-देश के रहने-वाले होने के कारण माध्यमिक थे। इन्हीं पर आक्रमण करने का कुछ अर्थ हो सकता है, न कि निर्धन बौद्ध-भिक्षुकों पर आक्रमण करना यवनों के लिये कोई महत्त्व का कार्य था।

७ चंद्रगुप्त और पुष्यमित्र नाम के कई राजा हुए हैं।

पुष्यमित्र वलख-देश का राजा था, और वह भूमि यज्ञ के लिये निषिद्ध है। वहाँ यज्ञ कैसे हो सकता था। वल्कि चंद्रगुप्त सभा का तो महाभाष्य की सव पुस्तकों में ज़िक्र भी नहीं है, किसी-किसी में है। इन नामों में इस स्थल पर कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, और न उनका उद्देश कोई ऐतिहासिक घटना को सिद्ध करना है। ये सव पद उदाहरण-रूप से दिए हैं। ऐसे नामों के कई राजा हो चुके थे।

८ राजतरंगिणी की वहुत-सी ऐतिहासिक वातें ग़लत सावित हुई हैं। यह ग्रंथ पूर्ण विश्वसनीय नहीं है। यदि छंदाचार्य ने महाभाष्य का प्रचार किया, तो इससे पतंजलि का समय निश्चित नहीं हो सकता, और न इस युक्ति से पतंजलि सन् ईसवी से ३०० वर्ष पहले के हो सकते हैं।

९ जिसका ज़िक्र वौद्ध-यात्री ने किया है, वह वौद्धधर्माव-लंवी कात्यायन था, न कि वह कात्यायन, जिनके वार्तिकों पर महाभाष्य का अवलंवन है। इस नाम के कई मनुष्य हुए हैं।

१० किसी सूत्र में वौद्ध-मत का उल्लेख नहीं है। जिस विषय का खंडन है, वह वौद्ध-मत के पहले भी था। सूत्रों में वौद्ध-मत के नाम से कोई खंडन नहीं है। जो कुछ है, वह भाष्यकार और टीकाकारों की कृपा से हुआ मालूम होता है।

११ पतंजलि योग-विचारों के आद्याचार्य नहीं हैं, वल्कि

हिरण्यगर्भ हैं। इनके पीछे वार्षगण्य हुए, और उनके पीछे याज्ञवल्क्यादि। ब्रह्मसूत्रों में पतंजलि का नाम नहीं है। प्राचीन योग-मत का खंडन नहीं है। श्रीशंकराचार्यजी ने भी हिरण्यगर्भ के योग-ग्रंथ के एक सूत्र का उल्लेख किया है। पातंजल में योग-सूत्रों का जिक्र कहीं नहीं है।

इन सब युक्तियों को देखते हुए यही मालूम होता है कि योगसूत्र और महाभाष्य के कर्ता एक ही पतंजलि थे, और इन्होंने ही वैद्यक-विषय पर भी एक ग्रंथ लिखा था। इनका उद्देश चित्त, वचन और शरीर, तीनों के दोषों को दूर करना था, और इसी विचार से इन्होंने तीन ग्रंथ यानी योगसूत्र चित्त की शुद्धि के लिये, महाभष्य वचन की शुद्धि के लिये और वैद्यक ग्रंथ शरीर का मल दूर करने के लिये लिखे। यह मत बहुत-से पाश्चात्य विद्वानों का भी है।

पतंजलिजी का समय

पतंजलि किस समय हुए, इस विषय पर बड़ा मतभेद है। हम कुछ पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानों के मत लिखते हैं, जो परस्पर-विरोधी होने के कारण विश्वसनीय नहीं हैं। ये बहुत कुछ मनःकल्पनाएँ हैं।

(१) Boh Alingk कहते हैं कि पतंजलि सन् ईसवी के २५० वर्ष पूर्व हुए।

(२) Maxmuller (मैक्समूलर) के मतानुसार इनका समय सन् ईसवी के २०० वर्ष पूर्व का है।

(३) Weber (वेबर) कहते हैं कि यह समय ईसा से १४० वर्ष पहले से ६० वर्ष पीछे तक का हो सकता है। यह योगसूत्र के पतंजलि को शतपथ ब्राह्मण के काव्य पातंजल से मिलाते हैं।

(४) Gold Stricker के मतानुसार पतंजलि का समय ईसा के १४० वर्ष पहले से १२० वर्ष पीछे तक का है।

(५) Dr. Peterson (पीटर्सन) कहते हैं कि पतंजलि का समय ईसा से दूसरी शताब्दी पीछे का है; क्योंकि महाभाष्य में पुष्यमित्र राजा का उल्लेख है, और इस राजा को स्कंदगुप्त ने ईसा के पीछे दूसरी शताब्दी में हराया था।

(६) Prof. J. H. Wood के मतानुसार पतंजलि ईसा से ३००-५०० वर्ष पीछे हुए।

(७) डाक्टर भांडारकर पतंजलि का काल ईसा से १४४-४२ वर्ष पूर्व बताते हैं।

(८) प्रोफ़ेसर सुरेंद्रनाथदास गुप्त, जिन्होंने भारतीय दर्शनशास्त्रों का इतिहास लिखा है, पातंजल-समय ईसा से १४७ वर्ष पहले बताते हैं।

(९) पंडित एन्० भाष्याचार्य, जिन्होंने पातंजल-काल पर एक महत्व-पूर्ण पुस्तक लिखी है, पतंजलि का समय ईसा के १००० वर्ष पूर्व का बताते हैं।

इन सब मतों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि निश्चित् रूप से कौन-सा काल ठीक है। हम यही कह सकते हैं कि पतंजलि ईसा से बहुत वर्ष पहले हुए होंगे। महात्मा बुद्ध से पहले भी हुए हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। इन सूत्रों पर व्यास-भाष्य होने से ही इनकी प्राचीनता सिद्ध है। व्यास के समय को कोई भी ईसा के आस-पास का नहीं बता सकता है। व्यासजी का समय कम-से-कम ईसा के ५०० वर्ष पहले का माना गया है; क्योंकि आदि महाभारत पुस्तक ईसा से कई शताब्दी पहले की बनी है, यह पाश्चात्य विद्वान् भी मानते हैं। जब व्यासजी ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुए, और उन्होंने योगसूत्रों पर भाष्य लिखा, तो योगसूत्रों का रचयिता इनके पहले का हुआ। अतः पतंजलि का समय ईसा से ६०० वर्ष पहले से कम का नहीं हो सकता। इससे भी पहले का हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

पतंजलि के जीवनचरित्र-संबंधी बातें

यह तो हुआ इनके समय का विवरण। अब यह बताना है कि यह कौन-से देश में हुए और किनके पुत्र थे। इस विषय

में खोज से जो कुछ पता चला है, वह यह है कि पतंजलि का जन्म काश्मीर देश के गोनर्द स्थान में हुआ था। इनकी माता का नाम गोणिका था। गोनर्द स्थान में उत्पन्न होने के कारण इनका नाम गोनर्दीय हुआ, और गोणिका के पुत्र होने से इनका नाम गोणिका-पुत्र पड़ा। महाभाष्य में पतं-जलि ने अपना परिचय इन दोनो ही नामों से दिया है।

पतंजलि के अन्य नाम ये हैं:—फणी, अनंत, शेष, चूर्णिकृत, वररुचि आदि-आदि।

ऐसा कहा जाता है कि पतंजलि शेषावतार हैं। इनका पतं-जलि नाम होने का कारण यह बताया जाता है कि वह लोक-हित के लिये सर्पाकार बनकर स्वर्ग से पाणिनि मुनि की अंजलि में गिरे थे। अंजलि में गिरने के कारण पतंजलि हो गए।

राजतरंगिणी के मतानुसार गोनर्द स्थान, जहाँ पतंजलि का जन्म हुआ था, काश्मीर में है, और डॉक्टर भांडारकर की खोज से यह स्थान वर्तमान गोंडा ज़िले में गोनर्द गाँव है। यदि पिछली बात सही है, तो पतंजलि मुनि संयुक्त-प्रांतीय गोंडा ज़िले के निवासी थे।

इनके गोनर्दीय और चूर्णिकृत नामों का उल्लेख हेमचंद्र के अभिधान-चिंतामणि कोप में है, और इनका वररुचि नाम शब्द-रत्नावली में आया है।

योग-दर्शन के मुख्य-मुख्य सिद्धांत

प्रमाण—योग-दर्शन में तीन प्रमाण माने गए हैं, अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम यानी शब्द-प्रमाण।

चित्त—सांख्य-दर्शन में चित्त अंतःकरण का एक भाग माना गया है। अंतःकरण में बुद्धि, अहंकार, चित्त और मन, चार वस्तुएँ हैं। योगशास्त्र में 'चित्त'-शब्द इन सब के अर्थ में आया है, यानी अंतःकरण का अर्थ रखता है। पतंजलिजी की यह नई बात है। दूसरे दर्शनों में चित्त इतने व्यापक अर्थ में नहीं आया। योगदर्शन-सिद्धांतानुसार चित्त न स्वयं प्रकाशक है, और न पर-प्रकाशक। पुरुष के आभास से यह वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है। चित्त इंद्रियों के समान ज्ञेय पदार्थ है, इसलिये वह ज्ञाता नहीं हो सकता। एक ही समय में दो बातों की धारणा नहीं हो सकती, यानी अपने स्वभाव की और अन्य वस्तुओं के स्वभाव की। इसलिये चित्त न स्वयं प्रकाशक है, और न पर-प्रकाशक। जब चित्त में पुरुष का आभास होता है, तब पुरुष उसे जान लेता है, यानी उसका भोग करता है। चित्त परिणाम-शील है। उसमें परिवर्तन होता रहता है। जब चित्त में किसी वस्तु का प्रभाव या [illegible] है, तब वह उसे जान लेता है। यदि उसमें ऐसा रंग न पड़े, तो वह नहीं जानता, और यह उसके परिणाम

शील होने के कारण है। चित्त पर बाहर की वस्तुओं का रंग पड़ता है। और भीतर से पुरुष का आभास पड़ता है। इसलिये वह जड़ और चैतन्य, दोनो है। चैतन्य पुरुष के आभास के कारण ही है, नहीं तो वास्तव में वह जड़ है। चित्त पुरुष से पृथक् है, लेकिन वह पुरुष के लिये ही है; क्योंकि पुरुष उसके बिना भोग नहीं कर सकता। चित्त की पाँच वृत्तियाँ हैं—प्रमाण, वितर्क, विकल्प, निद्रा और स्मृति। कर्म के संस्कार और वासनाएँ चित्त में ही रहती हैं। जब ये दूर हो जाती हैं, तो चित्त शुद्ध हो जाता है, और उसे कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है। (परिशिष्ट २ देखो) चित्त में तीनो गुण भी हैं।

समाधि—सांख्यशास्त्र में कैवल्य ज्ञान का विवेक द्वारा प्राप्त होना लिखा है, और योगशास्त्र में समाधि द्वारा। समाधि क्या है, और वह कै प्रकार की है, यह आगे पुस्तक में सविस्तर वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस विषय में परिशिष्ट २ भी देखो।

ईश्वर—सांख्यशास्त्र ईश्वर की सिद्धि नहीं मानता। यहाँ ईश्वर से अभिप्राय सगुण परमात्मा से है। सांख्य सगुण ईश्वर की आवश्यकता नहीं समझता; पर योगशास्त्र में समाधि प्राप्त करने के लिये ईश्वर की आवश्यकता मानी

गई है। पतंजलि मुनि के मतानुसार ईश्वर एक विशेष पुरुष है, जो क्लेश, कर्म और कर्मफल के आशयों से रहित है। वह न तो मूल-प्रकृति है और न सामान्य पुरुष। उसकी सर्वज्ञता अंतिम कोटि की है। वह प्राचीन-से-प्राचीन पुरुषों का गुरु है, और उसमें काल-रूपी बंधन भी नहीं है। उसको बतानेवाला शब्द ॐ है, जिसके जप और ध्यान से समाधि की सब बाधाएँ दूर हो जाती हैं। योगशास्त्र ने ईश्वर माना है। इसलिये इसे सेश्वर-सांख्य कहते हैं। सांख्य २५ तत्त्वों को मानता है, और योग २६ तत्त्वों को। यानी एक ईश्वर-तत्त्व पृथक् मानता है। (परिशिष्ट १ देखो)

प्रकृति—योग प्रकृति का वही रूप मानता है, जो सांख्य मानता है। इसमें सत्त्व, रजः और तमः, तीन गुण हैं। इसी में पंचभूत और ११ इंद्रियाँ हैं। प्रकृति के चार रूप हैं—विशेष, अविशेष, लिंग-मात्र और अलिंग, जिनका विवरण दूसरे पाद में दिया है। अति सूक्ष्म बुद्धितत्त्व से लगाकर स्थूल-से-स्थूल पदार्थ पाषाण तक प्रकृति में ही हैं। पुरुष इससे पृथक् है। प्रकृति जड़ है, और परिणामशील भी, और पुरुष चैतन्य और परिणाम-शून्य है। पुरुष के आभास से ही प्रकृति अपना काम पुरुष के लिये करती है। (परिशिष्ट १ देखो)

पुरुष—चैतन्य तत्त्व है। वह परिणाम और गुणों से रहित

है। वह शुद्ध दृक् शक्ति है। वह न बुद्धि-स्वरूप है, और न बुद्धि-स्वरूप नहीं। पुरुष के समीप त्रिगुणात्मक प्रकृति अपना काम करती है। वह निश्चल-रूप से प्रकृति के खेलों को देखता है। उसके लिये ही यह दृश्यमान संसार है। जिसे विवेक हो जाता है, उसके लिये प्रकृति नष्ट हो जाती है, और दूसरों के लिये बनी रहती है। पुरुष अनेक हैं; एक नहीं। परिणाम-रहित होने से पुरुष चित्त की सब वृत्तियों को सदैव जानता है। पुरुष चित्त का भोग करता है। पर वह चलायमान नहीं है। जब उसका आभास चित्त पर पड़ता है, तो वह उसे अपनी बुद्धि समझता है। पुरुष का अधिक वर्णन कैवल्य-पाद में देखो। पुरुष असंग है, और विभु है।

पुरुष-प्रकृति का संयोग-वियोग—प्रकृति और पुरुष का संयोग अविद्या से होता है। इस संयोग से पुरुष और प्रकृति, दोनो की शक्तियों का स्वरूप प्रकट होता है। अविद्या के नष्ट होने पर यह संयोग भी नष्ट हो जाता है, और पुरुष अकेला रह जाता है। इसी अवस्था का नाम कैवल्य है, जिसको प्राप्त करना सांख्य और योग, दोनो दर्शनों का परम उद्देश है। पुरुष-प्रकृति का वियोग विवेक और समाधि से होता है। सांख्य-वाले इसकी प्राप्ति विवेक द्वारा बताते हैं, और योगवाले निर्विकल्प समाधि द्वारा।

कैवल्य—पुरुष-प्रकृति का अलग-अलग हो जाना, यानी प्रकृति के नष्ट होने पर पुरुष का अकेला रह जाना। संसार-बंधन प्रकृति द्वारा है। जिसने विवेक और समाधि द्वारा अपने कर्मों के संस्कारों का नाश कर दिया है, और चित्त में उनका कोई चिह्न नहीं रक्खा, वह स्वच्छ स्फटिक मणि के समान अपने सत्त्व-गुण में चमकने लगा है। अब पुरुष के भोगने को कोई वस्तु नहीं रही, और वह केवल अपना ही रूप देखता है, वह कैवल्य प्राप्त करता है। पुरुषार्थ-शून्य गुणों का प्रसव बंद हो जाना अथवा चित्त-शक्ति का अपने रूप में स्थित हो जाना कैवल्य है।

कर्म—मनुष्यों के कर्म चार प्रकार के हैं—काले, सफ़ेद, काले-सफ़ेद और न काले और न सफ़ेद। दुराचारियों और दुष्टों के कर्म काले रंग के होते हैं। धार्मिक और जप-तप करनेवाले मनुष्यों के कर्म सफ़ेद होते हैं। साधारण संसारी मनुष्यों के कर्म सफ़ेद और काले होते हैं; क्योंकि वे कभी पुण्य करते हैं और कभी पाप। संन्यासियों के कर्मों का रंग न काला होता है और न सफ़ेद; क्योंकि उनके सब क्लेश नष्ट हो गए हैं, और उनकी सब इच्छाएँ जाती रही हैं। इन कर्मों के संस्कार (निशान) चित्त में हो जाते हैं, और मृत्यु हो जाने पर भी बने रहते हैं।

संस्कार-वासनाएँ—कर्मों के चिह्न जो चित्त में रह जाते हैं, उन्हें संस्कार कहते हैं। इन्हीं संस्कारों से अच्छे-बुरे फल मिलते हैं, और अनेक जन्म धारण करने पड़ते हैं। इस समय हम जो कर्म कर रहे हैं, उनके संस्कार भी चित्त में होते जाते हैं, लेकिन जो संस्कार पहले जन्मों में बन गए हैं, उन्हें वासनाएँ कहते हैं। जब योग द्वारा वासनाओं का नाश हो जाता है, और फल देनेवाले संस्कारों का बनना बंद हो जाता है, तब कैवल्य पद प्राप्त होता है। ये वासनाएँ स्मृति-रूप में रहती हैं। इनकी उत्पत्ति इंद्रियों के विषय-भोग से होती है। विषय-भोग इच्छा से उत्पन्न होते हैं, और इच्छा अज्ञान (अविद्या) से। इसका नाश ज्ञान और योग से होता है।

पुनर्जन्म—भारतीय सभी दर्शनशास्त्र पुनर्जन्म को मानते हैं, जो कर्मविपाक के लिये बहुत जरूरी है। योगशास्त्र में भी पुनर्जन्म माना गया और कहा गया है कि जैसा कर्म-फल होने को होता है, वैसी ही वासनाओं का उदय होता है। यदि कोई प्राणी पहले मनुष्य था, और अब कर्म-फल से बैल बना है, तो बैल की देह के अनुसार जो वासनाएँ हैं, वे ही प्रकट होंगी, और दूसरी वासनाएँ, जो देव-शरीर तथा मनुष्य-शरीर के अनुकूल हैं, वे चित्त में गुप्त पड़ी रहेंगी। जब कभी उसका देव-शरीर होगा, तब इनका विकास होगा, चाहे इसके होने

में हज़ारों वर्षों का अंतर क्यों न पड़ जाय। वासनाओं का नाश नहीं होता, वे गुप्त पड़ी रहती हैं, और कर्म-फल से जैसा-जैसा जन्म होता है, उसी के अनुसार इनका उदय होता है। समाधि द्वारा वासनाओं का ध्वंस हो सकता है।

परिणाम—पतंजलि तीन प्रकार के परिणाम मानते हैं, और कहते हैं कि वास्तव में ये तीनो प्रकार के परिणाम एक ही हैं। धर्मों के रहने के तरीक़े पृथक्-पृथक् हैं, जिससे परिणाम भी पृथक्-पृथक् हैं। तीन परिणाम ये हैं—धर्म-परिणाम, लक्षण-परिणाम और अवस्था-परिणाम। पृथ्वी से घट बन जाना धर्म-परिणाम है। घट पहले भविष्य रूप में था, अब वर्तमान रूप में आ गया है। यह आना ही लक्षण-परिणाम है। जब यह घट भूत या पुराने रूप में चला जायगा, तब इसका अवस्था-परिणाम होगा।

वस्तु के धर्म भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीन रूपों में रहते हैं, इसी कारण परिणाम भी तीन हैं।

परिणामवाद—विवर्तवाद, परिणामवाद और आरंभवाद तीन मत हैं। वेदांत का मत विवर्तवाद है, सांख्य और योग का परिणामवाद और न्याय और वैशेषिक का आरंभवाद पूर्व-मीमांसा भी आरंभवाद को मानती है। जैसे रस्सी में सर्प तथा नदी में लहरें विवर्त यानी भ्रम-रूप हैं, वैसे ही ब्रह्म में

जगत् विवर्त है। यह विवर्तवाद है। जैसे दूध का दही बन जाता है, वैसे ही प्रकृति का रूप जगत् में परिणत हो जाता है। यह परिणामवाद है।

जैसे पाषाणों को जोड़कर घर बनता है, वैसे ही परमाणुओं के विविध रूप में संगठित होने से जगत् बनता है। यह आरंभवाद है।

वस्तुज्ञान की क्रिया—पहले इंद्रिय का संयोग अपने विषय से होता है, यानी नेत्र का दृष्टि से, कर्ण का श्रवण से इत्यादि। फिर इंद्रिय और मन का, फिर मन और बुद्धि का संयोग होता है। बुद्धि पर पुरुष का आभास पड़ता है, इससे बुद्धि सचेत होकर मन में प्रेरणा करती है, जब उस वस्तु का ज्ञान होता है।

वस्तुतत्त्व की सत्यता—बौद्धों के विज्ञानवादियों की तरह पतंजलि यह नहीं कहते कि बाहरी संसार की सत्ता नहीं है; जो कुछ है, वह विज्ञान ही है; बाहरी वस्तु नहीं है। पतंजलि सत्य संसारवादी हैं, यानी बाहरी संसार को मानते हैं। इस बात के सिद्ध करने में आपने कई प्रमाण दिए हैं, और उनके भाष्यकारों ने विज्ञानवादियों के मत का खंडन किया है। चौथा पाद पढ़ो। वहाँ इस विषय का वर्णन है।

सिद्धियाँ—योगशास्त्र में अनेक अद्भुत सिद्धियों का ज़िक्र

है। ये सब योग-साधन से प्राप्त हो सकती हैं। (विभूति-पाद देखो)।

अष्टांगयोग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इनका सविस्तर वर्णन आगे दिया है।

सांख्य और योग-सिद्धांतों की समता और भिन्नता

सांख्य और योग दोनो जगत् को प्रकृति का परिणाम मानते हैं। इस प्रकृति में २३ तत्त्व हैं। (परिशिष्ट १ देखो)

सांख्य त्रिगुणात्मक प्रकृति को जगत् का कारण मानता है, और योग कर्मानुसार प्रकृति और तन्नियामक ईश्वर को जगत् का कारण मानता है।

सांख्य ईश्वर को नहीं मानता ; परंतु योग ईश्वर को मानता है, और कहता है कि ईश्वर विशेष पुरुष है, जिसमें क्लेश, कर्म, विपाक, आशय, बंध आदि नहीं हैं।

सांख्य जीव को असंग, चेतन, विभु, नाना और भोक्ता बताता है। योग भी यह कहता है, लेकिन उसे कर्ता भी बताता है।

सांख्य के अनुसार बंध का हेतु अविवेक है, और योग के अनुसार अविद्या। सांख्य के अनुसार अध्यात्मादि त्रिविध

दुःख बंध हैं, और योग के अनुसार प्रकृति-पुरुष-संयोग-जन्य अविद्यादि पंच-क्लेश बंध हैं।

सांख्य-मत का मोक्ष त्रिविध दुःखों का नाश है, और योग-मत का मोक्ष प्रकृति-पुरुष-संयोग का नाश, और अविद्यादि पंच-क्लेशों की निवृत्ति है।

सांख्य का मोक्ष-साधन प्रकृति-पुरुष-विवेक है, और योग का निर्विकल्प समाधि और विवेक।

सांख्य-मतानुसार अधिकारी संदिग्ध विरक्त मनुष्य है, और योग एकाग्रचित्तवाले को अधिकारी समझता है।

सांख्य ज्ञान-कांड है, और योग उपासना-कांड। सांख्य और योग, दोनो ही परिणामवाद मानते हैं।

सांख्य और योग, दोनो पुरुषों (जीवात्माओं) को अनेक मानते हैं। दोनो द्वैतवादो हैं।

सांख्य और योग, दोनो तीन प्रमाणों को यानी प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द (आगम) को मानते हैं।

सांख्य और योग, दोनो अख्याति को मानते है।

सांख्य और योग, दोनो जीव-जगत् परमार्थ-सत्ता मानते हैं।

सांख्य का उपयोग 'त्वं' पदार्थ-शोधन है, और योग का चित्तैकाग्रय।

योग-दर्शन के अध्याय और सूत्र

पातंजल योग-सूत्र चार पादों में विभक्त हैं—

१ समाधि-पाद, जिसमें ५१ सूत्र हैं।
२ साधन-पाद, जिसमें ५५ सूत्र हैं।
३ विभूति-पाद, जिसमें ५६ सूत्र हैं।
४ कैवल्य-पाद, जिसमें ३३ सूत्र हैं।

इस प्रकार इन चारों पादों में १९५ सूत्र हैं। किसी-किसी पुस्तक में तीसरे और चौथे पादों में क्रमशः ५४ और ३४ सूत्र हैं। इस प्रकार कुल सूत्र १९४ हुए।

किसी-किसी विद्वान् का मत है कि ये सूत्र तीन ही पादों में समाप्त हो गए थे। पतंजलि मुनि ने इन तीन ही अध्यायों अथवा पादों को लिखा था, और वे ही प्राचीन हैं। चौथा पाद, जिसमें बौद्ध-मत का खंडन है, पीछे से मिला हुआ मालूम होता है, और उसके कारण ये मालूम होते हैं—

१ पहले तीन पादों में सूत्रों की संख्या ५१,५५,५६ है। पर चौथे पाद में केवल ३३ सूत्र ही हैं। इस पाद में संख्या कम होने का यह कारण दिखाई देता है कि इसे किसी अन्य लेखक ने लिखा है।

२ चौथे पाद के सूत्रों की लेखन-शैली भी पहले तीन पादों के सूत्रों की लेखन-शैली से भिन्न है।

३ इस पाद में ३०-३४ सूत्रों की पुनरुक्ति है।

पहले तीन अध्याय (पाद) ईसा से पूर्व के रचे हुए हैं, और चौथा पाद ईसा से पीछे का बना मालूम होता है। संभव है, जब बौद्ध विज्ञान-वादियों का ज़ोर बढ़ा, तो उनके मत का खंडन करने के लिये चौथा पाद बना दिया गया। मेरी सम्मति में यह शंका व्यर्थ है। सब पाद पतंजलि मुनि के ही लिखे हुए हैं, और ईसा से कई शताब्दि पहले के रचे हुए हैं।

पातंजल सूत्रों पर व्यास-भाष्य है, उस पर वाचस्पति मिश्र की तत्त्व-वैशारदी टीका है। योग-वर्तिका विज्ञान भिक्षु की है, और भोजवृत्ति भोजदेव की। नागेश की छाया-व्याख्या भी अच्छी है। योग-विषय से संबंध रखनेवाले मुख्य-मुख्य ग्रंथों और पुस्तकों की सूची इसके साथ लगा दी है। इस सूची के सभी ग्रंथ छपे हुए नहीं हैं, बहुत-से बिना छपे, हस्त-लिखित पुस्तकों के रूप में हैं।

अँगरेज़ी भाषा में जो योग-संबंधी पुस्तकें छपी हैं, उनकी भी एक सूची लगा दी है।

योग-संबंधी पुस्तकों की सूची

पातंजल योगसूत्रम्, पतंजलि-कृत

पातंजल योग-सूत्र, नारायण तीर्थस्वामी-कृत व्याख्या

पातंजल योग-सूत्र, विवृति, भोजराज-कृत

योगतत्त्व-दीपिका, अष्टावक्र-कृत

योगतारावलि, गोविंदाचार्य-कृत

योगयाज्ञवल्क्यगीता

योगरत्नप्रदीपिका, भोगीश्वर योगी-कृत

योग-विषय, मीननाथ-कृत

योगशास्त्रम्, दत्तात्रेयकृतम्

योगसार

राजयोग, अगस्त्य मुनि-कृत

राजयोगभाष्यम्

राजयोगसार, श्रीशंकराचार्य

राजयोगसिद्धांतरहस्य

समाधिलक्षणम् (वासुदेवमननम्)

विजृंभितयोगशास्त्रम्, शंकराचार्य-कृत,

शिवयोगप्रदीपिका, शिवयोगनाथ-कृत

स्वरूपदर्शनसिद्धांजनम्

हठप्रदीपिका, स्वात्मारामयोगी-कृत

अमरौघ-प्रबोध, गोरक्षनाथ-कृत

अमृतसिद्ध-योग, विरूपाक्ष सिद्धि-कृत

कपिलगीता

दत्तात्रेय-बोध

व्यासभाष्य

तत्त्ववैशारदी, वाचस्पति मिश्र-कृत

योगवार्तिका, विज्ञान भिक्षु-कृत

छायाव्याख्या, नागेश-कृत

अष्टांगयोग, शंकराचार्य-कृत

तत्त्वबिंदु, रामचंद्र परमहंस-कृत

योगकल्पद्रुम, कुलमणि शुक्ल-कृत.

योगचंद्रिका, गोवर्द्धन योगींद्र-कृत

योगचिंतामणि, गदाधर मिश्र-कृत

योगज्ञान, आनंदसिद्ध-कृत

योगतारावलि, शुकदेव-कृत

यागप्रदीप, देवीसिंह देव-कृत

योगशतक व्याख्यान, सनातन गोस्वामि-कृत

योगसारसंग्रह, विज्ञान भिक्षु-कृत

योगानुशासन, आधारेश्वर-कृत

विवेक-मार्तंड, रामेश्वर भट्ट-कृत

षट्चंद्रदीपिका, ब्रह्मानंद-कृत

हठयोग, आदिनाथ-कृत

राज-मार्तंड, भोजदेव-कृत

योगसूत्रार्थचंद्रिका, अनंत-कृत

योगसुधाकर, आनंदशिष्य-कृत
योगवृत्ति-संग्रह, उदयंकर-कृत
योगसूत्रवृत्ति, उमापति त्रिपाठि-कृत
नवयोगकल्लोल, क्षेमानंद दीक्षित-कृत
पातंजल वृत्ति, गणेश दीक्षित-कृत
योगसूत्र विवृति, ज्ञानानंद-कृत
गूढार्थद्योतिका, नारायण मिश्र-कृत
पातंजलाभिनव व्याख्या, भवदेव-कृत
योगसूत्रवृत्तिटिप्पन, भवदेव-कृत
योगसूत्रवृत्ति, महादेव-कृत
योगमणिप्रभा, रामानद सरस्वती-कृत
योगसूत्रभाष्य, रामानुज-कृत
योगसूत्रवृत्ति, वृंदावन शुक्ल-कृत
योगवृत्ति, शिवशंकर-कृत
पातंजलसूत्रवृत्ति, सदाशिव-कृत
पातंजल-रहस्य, राघवानंद यति-कृत
पातंजलरहस्यप्रकाश, श्रीधरानद यति-कृत
घेरंड-संहिता

English translations of works on Yoga & other books on same.

Yoga Sutras translated by Ballantyne, 1852.

" " " Govinddeva Sastri

" " " Rajendralal Mitra 1883 with Bhoj Commentary

" " " Ram Prasad M.A.

Yogasara Sangraha of Vignan Bhikshu translated by Ganganath Jha, 1894.

Essay on Yoga by Colebrooke.

Study of Patanjali by Surendranath Das-Gupta M. A., Ph D.

Yoga Philosophy in relation to other Indian Systems of thought by above mentioned author.

Yoga by James H. Woods.

Sankhya & Yoga by R. Garbe

The Study of Yoga by Groe Williams Judge.

Natural Philosophy of the Ancient Hindus by S. N. Das Gupta

Swami Vivekanand's Rajayoga.

Ghirenda Sanhita Text & English translation by Hrischandra Vasu B. A

Yogasara Sangraha Text & English translation by Ganganath Jha

Hatha Yoga Pradipka with Commentary &

English translation by Srinivas Ayengar B. A.

Yoga Sutras of Patanjali translated by Manilal Nathu Bhai, Bombay.

Yoga Philosophy by N. C. Paul, Bombay.

Higher life (Rules of the Raj Yoga) translated by Bhagwan Budh. Bombay.

श्रीपातंजल योगदर्शन

१—समाधिपाद

चित्त की वृत्तियों को रोकना योग है।

बुद्धि, अहंकार, मन और चित्त, ये चारो मिलकर अंतः-करण कहलाते हैं। योगशास्त्र में केवल 'चित्त' शब्द से ही अंतःकरण का अर्थ लिया है। चित्त सत्व, रजः और तमः तीनो गुणों का बना है, और परिणामशील है। सत्त्वगुण का धर्म प्रकाश है, रजोगुण का क्रिया अथवा चेष्टा, और तमोगुण का धर्म अंधकार अथवा शिथिलता। चित्त में तीनो गुण हैं। इनके आपस में न्यूनाधिक होने से अनेक प्रकार के परिणाम होते रहते हैं। शनै-शनैः अभ्यास करने से जब चित्त के रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव कम हो जाता है, अथवा जाता रहता है, और सत्वगुण की प्रधानता हो जाती है, तब चित्त शुद्ध हो जाता है, और कैवल्य की ओर आकर्षित होता है।

चित्त की ५ भूमियाँ यानी अवस्थाएँ हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध।

क्षिप्त—जब चंचलता के कारण चित्त अनेक बातों में

दौड़ता रहता है, और किसी एक चीज़ पर स्थिर नहीं रहता, तो वह क्षिप्त है।

मूढ़—काम-क्रोध के वश में होकर जब चित्त अपना कर्तव्य भूल जाता है, और अज्ञानावस्था में हो जाता है, तब वह मूढ़ कहलता है।

विक्षिप्त—अनेक बातों में दौड़ता हुआ चित्त जब पल-दो पल के लिये स्थिर हो जाता है, तब वह विक्षिप्त है।

एकाग्र—जब चित्त किसी एक विषय में स्थिर हो जाता है, और उसमें सत्त्व-गुण की प्रधानता होती है, तब वह एकाग्र है।

निरुद्ध—जब चित्त बिलकुल स्थिर और चेष्टा-शून्य हो जाय, जो एकाग्रावस्था से अत्युन्नत अवस्था है, तब वह निरुद्ध है। उस समय उसकी सब प्रकार की चंचलता जाती रहती है।

योग-समाधि, जिसका वर्णन आगे होगा, चित्त की एकाग्र और निरुद्ध अवस्थाओं में होती है। एकाग्र चित्त की समाधि का नाम संप्रज्ञात समाधि है, और निरुद्ध चित्त की समाधि को असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं। पहली समाधि में अवलंबन रहता है, और दूसरी में अवलंबन नहीं रहता।

चित्त की मुख्य वृत्तियाँ पाँच हैं, जो सुखद और दुःखद होने के कारण १० होती हैं। वृत्तियाँ ये हैं—

१ प्रमाण, (जिसके तीन रूप प्रत्यक्ष अनुमान और आगम हैं),

२ विपर्यय,

३ विकल्प,

४ निद्रा, और

५ स्मृति ।

१ प्रमाण—यथार्थ ज्ञान, जैसा रूप है, वैसा ही ज्ञान।

(अ) प्रत्यक्ष प्रमाण—जो परिणाम या वृत्ति मनुष्य की बुद्धि में इंद्रियों और बाह्य भोग-विषयों के संबंध होने से उत्पन्न हो, उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। वस्तु का यथार्थ ज्ञान इसी वृत्ति से होता है। ज्ञानेंद्रियाँ पाँच हैं—

नेत्र, कान, नाक, जिह्वा और त्वक् (चमड़ा)।

बाहरी वस्तुओं का संबंध इंद्रियों से होता है। फिर इंद्रियों का मन से संबंध होता है, और मन का बुद्धि से और बुद्धि का आत्मा या पुरुष से संबंध होता है, तब ज्ञान उत्पन्न होता है। विषयों का ज्ञानेंद्रियों द्वारा जो ज्ञान पैदा होता है, वही प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह पाँच तरह से उत्पन्न होता है—नेत्रों द्वारा, कानों द्वारा, नाक द्वारा, जिह्वा द्वारा तथा त्वक् द्वारा, यानी दृष्टि, श्रवण, गंध-ग्रहण, रसास्वादन और स्पर्श। इस ज्ञान के होने में मन-इंद्रिय की पूरी सहायता रहती है, इसलिये मानस ज्ञान भी प्रत्यक्ष का अंग है।

(ब) अनुमान—जिस वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान न हो, वह अनुमान से जानी जाती है। जैसे आम का फल देखकर आम के वृक्ष का ज्ञान, धूम देखकर अग्नि के होने का ज्ञान।

अनुमान तीन प्रकार का है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट।

कारण को देखकर कार्य का ज्ञान, जैसे दूध को देखकर घृत का ज्ञान। यह पूर्ववत् अनुमान है।

कार्य को देखकर कारण का ज्ञान, जैसे चढ़ी हुई नदी को देखकर वृष्टि होने का अनुमान। यह शेषवत् अनुमान है।

समान वस्तु को देखकर समान वस्तु का अनुमान, जैसे अग्नि से बीज भस्म होते देखकर ज्ञानाग्नि से संस्कार-रूप बीजों के नाश का अनुमान करना अथवा छेदन का कारण कुठार देखकर ज्ञान का कारण इंद्रियों को जानना। यह सामान्यतोदृष्ट है।

(स) आगम (शब्द-प्रमाण)—जिसका ज्ञान अनुमानर से भी न हो, वहाँ शब्द-प्रमाण माना जाता है। जैसे किसी ऋषि-महात्मा का वाक्य। शब्द-प्रमाण द्वारा ही स्वर्ग, नरक आदि का विश्वास होता है। शब्द दो प्रकार का है—लौकिक और अलौकिक। लौकिक शब्द धर्मशास्त्र तथा अन्यान्य शास्त्र हैं और अलौकिक शब्द वेद है।

इन तीनो प्रमाणों में प्रत्यक्ष से अपरोक्ष का ज्ञान होता है, और अनुमान और शब्द से परोक्ष का।

२ विपर्यय—मिथ्या ज्ञान, जैसा रूप नहीं है, वैसा ज्ञान।

३ विकल्प—कल्पना। वस्तुशून्य-ज्ञान जो शब्द और वचन पर निर्भर है।

४ निद्रा—घोर निद्रा। ऐसी वृत्ति, जिसका अवलंबन अभाव कारण है। मैं खूब सोया, मेरा मन शांत और सुखो हो गया है—ऐसी-ऐसी बातों को कहना। यदि कारण का ज्ञान न होता, तो ऐसी बातें भी नहीं कही जा सकती थीं।

५ स्मृति—स्मरण-शक्ति, अनुभव की हुई चीज़ों को न भूलना। पूर्वोक्त वृत्तियों का रोकना अभ्यास और वैराग्य से होता है।

अभ्यास—चित्त की स्थिति प्राप्त करने के यत्न का नाम अभ्यास है। बिना किसी विघ्न के चित्त का दीर्घ-काल तक दृढ़ भूमि में जमा रहना अभ्यास है।

वैराग्य—संसार के पदार्थों तथा शास्त्र-विषयों की तृष्णा छोड़ना वैराग्य है। इससे चित्त वश में हो जाता है।

संसार के पदार्थ, जैसे स्त्री, अन्न, पान, ऐश्वर्य आदि। शास्त्रीय विषय, जैसे स्वर्ग-प्राप्ति, विदेह, प्रकृति-लयादि की अवस्था प्राप्त करने कीकामना।

जिस मनुष्य को पुरुष का दर्शन हो जाता है, उसे व्यक्त और अव्यक्त गुणों की कुछ परवा नहीं रहती।

हम पहले कह आए हैं कि संप्रज्ञात समाधि एकाग्र-चित्त में किसी एक वस्तु के अवलंबन से होती है। इस समाधि के चार रूप हैं, सवितर्क, सविचार, सानंद और सास्मिता।

सवितर्क संप्रज्ञात समाधि में किसी एक स्थूल तत्त्व का—जैसे पृथ्वी, वायु आदि का—अवलंबन किया जाता है। जब इस पर ध्यान जम जाता है, तब सूक्ष्म पदार्थों पर ध्यान जमाया जाता है। जैसे तन्मात्रादि पर। तब वह सविचार संप्रज्ञात समाधि होती है। इसके पीछे महत्तत्त्व आदि सूक्ष्म वस्तुओं का अवलंबन कर ध्यान करते हैं, और जब उस अवलंबन से तदाकार चित्त की वृत्ति बन जाती है, तो वह सानन्द से संप्रज्ञात समाधि है। 'अहं' तत्त्व का ध्यान करते हुए तदाकार चित्त की वृत्ति का नाम सास्मित संप्रज्ञात समाधि है। इन सब समाधियों में अवलंबन की आवश्यकता रहती है। ये चारो समाधियाँ उत्तरोत्तर उच्च होती जाती हैं। पहली समाधि में केवल स्थूल वस्तु, जैसे पंचभूत तथा चतुर्भुज भगवान् पर ध्यान जमाया जाता है। दूसरी में सूक्ष्म तत्त्वों, जैसे तन्मात्रादि पर। तीसरी में इससे भी सूक्ष्म तत्त्व, जैसे महत्

तत्त्व पर। और चौथी में अहं यानी मैं तत्त्व पर। जिस आलंबन पर ध्यान किया जाता है, उसी के आकार की चित्त-वृत्ति हो जाती है।

दूसरी समाधि यानी असंप्रज्ञात समाधि वह है, जिसमें कोई अवलंबन नहीं रहता। विराम-रूपी अवलंबन का बराबर अभ्यास करने से यह समाधि होती है। यानी किसी वस्तु का अवलंबन नहीं, बल्कि ऐसा अवलंबन, जो कोई वस्तु ही नहीं है, जैसे विराम। इस ख़याल पर ध्यान लगाते-लगाते यह समाधि हो जाती है। इसमें सब चित्त की वृत्तियों का कार्य बंद हो जाता है। वे केवल संस्कार-मात्र ही रह जाती हैं। इसका उपाय परम वैराग्य है, जिसमें किसी भी वस्तु-तत्त्व की अभिलाषा नहीं रहती।

विदेह और प्रकृतिलय पुरुषों को यह समाधि बाहरी वस्तुओं से ही हो जाती है; लेकिन योगियों को श्रद्धा, पुरुषार्थ, स्मरण-शक्ति, ध्यान और विवेक से होती है, यानी उपायों द्वारा प्राप्त होती है। जो तीव्र संवेगवाले हैं, यानी तेज चित्त के हैं, उन्हें शीघ्र ही हो जाती है। योगी ६ प्रकार के हैं।—मृदूपाय, मध्योपाय और अधिमात्रोपाय। मृदूपाय तीन प्रकार के हैं—मृदुसंवेग, मध्यसंवेग और तीव्रसंवेग। इसी प्रकार

मध्योपाय और अधिमात्रोपाय भी तीन-तीन प्रकार के हैं। यों योगी ९ प्रकार के हैं। इनमें से जो अधिमात्रोपाय के तीव्र संवेग हैं, उन्हें समाधि-प्राप्ति सुलभ है। आशय यह कि ऊपर कह आए हैं कि योगियों को समाधि उपायों के द्वारा प्राप्त होती है। उपाय करनेवाले योगी तीन प्रकार हैं। पहले वे, जो धीमे-पन से उपायों का साधन करते हैं। दूसरे वे, जो इनसे अधिक उत्साह से उपाय-साधनों में रत हैं, यानी ये बीच के दर्जे के हैं। तीसरे वे जो खूब तेजी से उपाय करते हैं। इनमें भी प्रत्येक दर्जे के योगी के तीन-तीन प्रकार हैं—अल्पोत्साही, बीच के दर्जे के उत्साही और तीव्र उत्साही। जो तीव्र उत्साही हैं, उन्हें समाधि शीघ्र ही हो जाती है, और उसके फल की प्राप्ति भी जल्द हो जाती है।

अब प्रश्न यह है कि समाधि इसी प्रकार सुलभ हो जाती है, अथवा कुछ और भी उपाय हैं? उत्तर है कि हाँ, और भी उपाय हैं, जिनमें से एक ईश्वर-प्रणिधान यानी मन, वचन, काया से सब कार्य ईश्वर को समर्पित करके ही करे, उसी की भक्ति करे, उसकी सर्व-व्यापकता देखे। ईश्वर के अनुग्रह से उसे समाधि शीघ्र ही प्राप्ति हो जाती है।

ईश्वर

ईश्वर एक विशेष पुरुष है, जो क्लेश, कर्म और कर्मफल के

आशयों से रहित है। यह ईश्वर न तो मूल-प्रकृति है, और न सामान्य पुरुष। वह एक विशेष पुरुष है, जो क्लेश, कर्म, कर्मफलों के बंधनों से रहित है। क्लेश अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश हैं, जिनका ज़िक्र आगे होगा। कर्म अच्छे या बुरे, कर्मफल इनका अच्छा तथा बुरा फल। इनके गुणों के अनुसार जो वासनाएँ हैं, वे ही आशय हैं। ये सब रहते तो चित्त में हैं, लेकिन इनका भोक्ता पुरुष कहलाता है। जैसे संग्राम में लड़ते तो सिपाही हैं, लेकिन संग्राम की हार-जीत राजा की कही जाती है। ईश्वर इन सब बातों से असृष्ट है।

यह बात भी नहीं कि जिस पुरुष को मुक्ति हो गई है, और जिसके क्लेश, कर्म, कर्मफल-बंधन टूट गए हैं, वह ईश्वर है। ईश्वर में तो ये बंधन कभी थे ही नहीं, और न होंगे। उसकी सर्वज्ञता अंतिम कोटि की है, यानी उससे बढ़कर सर्वज्ञता हो ही नहीं सकती। वह प्राचीन से प्राचीन पुरुषों का गुरु है। उसमें काल-रूपी बंधन नहीं हैं। उसको बतानेवाला शब्द प्रणव यानी ॐ है। उसका जप और उसके अर्थ की भावना आवश्यक है (क्योंकि शब्द और अर्थ में नित्य संबंध है)। इससे योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है। इसके द्वारा आत्मा का ज्ञान होता है, और सब अंतरायों यानी विघ्नों और बाधाओं का लोप भी हो जाता

है। अंतराय ये हैं—व्याधि, थकन, संशय, प्रमाद, आलस्य, विषय-तृष्णा, भ्रांति समाधि न प्राप्त करना, चंचलता। ये चित्त-विक्षेप वाले अंतराय हैं। इनके साथी दुःख, निराशा, अस्थिरता, श्वास और प्रश्वास भी हैं। इनको रोकने के लिये एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए, यानी एक सत्य वस्तु पर ही मन को लगाना चाहिए। अनेक वस्तुओं पर ध्यान छिन्न-भिन्न नहीं कर देना चाहिए।

चित्त की शुद्धि इनसे होती है—

मैत्री, करुणा, मुदिता (प्रसन्न रहना), सुख-दुःख और पुण्य-पाप के विषयों की उपेक्षा यानी इनसे उदासीनता। इन सब बातों पर बार-बार ध्यान देना, और उन्हें वर्ताव में लाना चाहिए।

चित्त की स्थिरता प्राण-वायुओं के रोकने और निकालने से प्राप्त करनी चाहिए। नाक के आगे के भाग पर ध्यान लगाने से दिव्य गंध का ज्ञान हो सकता है। जिह्वा के अग्र-भाग भाग पर ध्यान लगाने से आस्वादन-शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार अन्यान्य ज्ञानेंद्रियों के विशेष भागों पर ध्यान लगाने से उन-उन इन्द्रियों की उच्च शक्ति प्राप्त हो सकती है। इन उच्च ऐंद्रियिक शक्तियों के प्राप्त होने पर चित्त-स्थिति हो सकती है, संशय जाता रहता है, और समाधि का मार्ग खुल जाता है।

हृदय-कमल पर ध्यान करने से शोक-रहित ज्योतिर्मय वृत्ति उत्पन्न होती है। इससे भी चित्त स्थिर होता है।

ऐसे महात्माओं के विषय में चित्त लगाना, जिनके राग-द्वेष शेष जाते रहे हैं, जैसे द्वैपायन आदि। इससे भी चित्त की स्थिति होती है।

स्वप्न और निद्रा के ज्ञान पर चित्त लगाने से भी चित्त-स्थिति होती है। स्वप्न में कभी-कभी योगी को किसी दिव्य देवता के दर्शन हो जाते हैं, और जागने पर उसे उस पर ध्यान लगाने से चित्त की स्थिरता मिलती है। ऐसी सात्त्विक निद्रा में, जिससे उठने पर मनुष्य कहे कि मैं बड़े सुख से सोया, चित्त एकाग्र हो जाता है। ऐसी निद्रा को अवलंबन बनाने से भी चित्त स्थिर होता है।

जिस वस्तु पर चाहे, उस पर ध्यान लगावे। उस पर स्थिर चित्त होने पर दूसरी बातों में स्थिति हो सकती है।

इन साधनों के अभ्यास से योगी में ऐसी शक्ति आ जाती है कि वह छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी वस्तु के अंत तक पहुँच सकता है। जैसे स्वच्छ मणि के नीचे जिस वस्तु को रख दो, उसका रंग मणि में झलकने लगता है, वैसे ही जिस मनुष्य की वृत्ति क्षीण हो गई है, यानी जिसका चित्त स्थिर हो गया है, उसमें ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का जैसा रूप है, वैसा ही हो जाने

को शक्ति आ जाती है। उसका चित्त सत्त्विक हो जाने से स्वच्छ मणि के समान निर्मल हो जाता है। जिस वस्तु का उससे संबंध होता है, उसी वस्तु का वह रूप धारण कर लेता है। चित्त-निर्मलता के कारण वस्तु का तदाकार रूप हो जाने को शक्ति का नाम समापत्ति है।

समापत्ति चार प्रकार की है—

१ सवितर्क समापत्ति, जिसमें शब्द, अर्थ और ज्ञान मिला है, और यह निश्चय नहीं कि किसका ध्यान किया जाय।

जैसे 'गो'-शब्द, इसका अर्थ और गो का रूप, इन तीनो में किस पर ध्यान लगाया जाय, ऐसी समापत्ति सवितर्क है।

२ निर्वितर्क समापत्ति, जिसमें शुद्ध स्मृति और स्वरूप-शून्यता के कारण केवल अर्थ पर ही निश्चित ध्यान दिया जाय। पहली समापत्ति में तो यह निश्चय नहीं था कि गो शब्द पर ध्यान लगाया जाय, या गो शब्द के अर्थ पर, या उसके रूप पर, लेकिन इसमें यह निश्चय है कि केवल अर्थ पर ही ध्यान दिया जाय।

३ सविचार समापत्ति, जो सूक्ष्म विषय लिंग यानी चिह्न मात्र तक पहुँचती है।

४ निर्विचार समापत्ति में अविराम शुद्ध धारा होती है, जिससे अध्यात्म स्थिति और प्रसन्नता होती है।

पहली दो समापत्तियाँ स्थूल पदार्थों से संबंध रखती हैं, और पिछली दो सूक्ष्म पदार्थों से। इनके द्वारा सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों का हस्तामलक ज्ञान हो जाता है। ये चारो समापत्तियाँ सबीज समाधि हैं।

निर्विचार समापत्ति में अविराम धारा होने से आध्यात्मिक शुद्धि, स्थिरता तथा प्रसाद होता है। यानी बुद्धि शुद्ध होने से वह सब वस्तुओं को, जैसी हैं, वैसी जान लेता है। वह सब पर दया करता है। उसकी दृष्टि ऐसी ही हो जाती है, जैसी उस मनुष्य की, जो एक पर्वत पर चढ़ा हुआ नीचे के मैदानों को देखता है। ऐसी अवस्था में उसमें ऋतंभरा नाम की ज्ञान-शक्ति यानी प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है। इससे वह सब यथार्थ ज्ञान को जान लेता है। उसका सब मिथ्या ज्ञान चला जाता है। इस प्रज्ञा का संबंध विशेष वस्तुओं से होता है। उसका विषय श्रुत और अनुमान-प्रज्ञाओं से भिन्न होता है।

सूक्ष्म और दूर की चीजें और छिपी हुई चीजें, न प्रत्यक्ष से देखी जा सकती हैं न अनुमान और न शब्द-प्रमाण से। यदि उनका विशेष रूप जाना जा सकता है, तो ऋतंभरा नाम की प्रज्ञा से ही। उससे उत्पन्न हुए संस्कार दूसरे संस्कारों को रोकते हैं। समाधि से उत्पन्न हुए संस्कार दूसरे संस्कारों को रोकते हैं, और इस प्रकार शनैः-शनैः पहले सब

संस्कार दूर जो जाते हैं, और समाधि से उत्पन्न हुए संस्कारों से कर्म-बंधन नहीं होता। वे क्लेशों को दूर करने के लिये ही उत्पन्न किए जाते हैं।

उसके रोकने पर सब का निरोध हो जाता है। तब निर्वीज समाधि होती है। यानी जब सब संस्कारों का नाश हो जाता है, तब निर्वीज समाधि का उदय होता है।

नोट—असंप्रज्ञात समाधि में सब चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है और कोई अवलंबन भी नहीं रहता। केवल संस्कारों का वीज रह जाता है। पर निर्वीज समाधि में यह वीज भी नहीं रहता।

२—साधनपाद

क्रिया-योग। तप, स्वाध्याय और ईश्वर-पूजन, इन तीनों को क्रिया-योग कहते हैं। समाधि लगाने तथा क्लेशों को दूर करने के लिये यह क्रिया-योग किया जाता है।

क्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पाँच क्लेश हैं। क्लेशों की चार अवस्थाएँ हैं—

१ जब तक क्लेश प्रकट न हुए हों, उनके वीज गुप्त-रूप से हों।

२ जब ये प्रकट हो गए हों।

३ जब ये क्षीण-रूप में हों।

४ जब ये कभी प्रकट हों और कभी अप्रकट ।

चारो क्लेशों का उत्पत्ति-स्थान अविद्या है ।

अब प्रत्येक क्लेश की व्याख्या सुनिए।

अविद्या—अनित्य, अशुद्ध, दुःखदायी और अनात्मवस्तु को नित्य, शुद्ध, सुखदायी और आत्म-रूप मानना अविद्या है। प्रकृति को पुरुष समझ लेना अविद्या है ।

अस्मिता - वास्तव में प्रकृति और पुरुष पृथक्-पृथक् हैं। मोह से पुरुष-शक्ति और बुद्धि-शक्ति को एक समझना यानी भोक्ता और भोग्य-शक्तियों को, जो पृथक्-पृथक् हैं, एक समझना। 'मैं हूँ' यह समझना। वास्तव में पुरुष है, जिसमें मेरा-तेरापन कुछ नहीं है ।

राग—सुख-भोग की ओर आकर्षण का नाम राग है ।

द्वेष—दुःख की ओर आकर्षण का अभाव द्वेष है ।

अभिनिवेश—'मैं हमेशा जीता रहूँ,' 'मैं कभी न मरूँ'। सदैव जीवित रहने की इच्छा अथवा मरण-भय । यदि इन क्लेशों का उदय नहीं हुआ, तो इनकी वृत्तियाँ ध्यान द्वारा हट सकती हैं। योगी के निरुद्ध मन के साथ इनका नाश हो जाता है ।

कर्म—कर्म क्लेशों से उत्पन्न होता है, और उसका फल अनेक जन्मों में भोगना पड़ता है। जब तक क्लेशों की जड़ बनी है, तब तक कर्मों का फल, अच्छा या बुरा, जीवन के

अनेक भोगों में, भोगना पड़ता है। पुण्य का फल सुख है, और पाप का फल परिताप यानी दुःख। कर्मों के परिणाम, ताप, संस्कार तथा गुणों की विरुद्धता के कारण विवेकी पुरुष को संसार दुःखमय ही दिखाई देता है। जो दुःख अभी उपस्थित नहीं हुआ, उसे रोकने की भरपूर चेष्टा करनी चाहिए। दुःख पुरुष और प्रकृति के संयोग से उत्पन्न होता है। जब यह संयोग जाता रहता है, तो दुःख का भी नाश हो जाता है।

दृश्य यानी प्रकृति—प्रकृति ही दृश्य संसार है। इसमें सत्त्व, रजः और तमः, तीन गुण हैं। सत्त्व प्रकाश, रजःक्रिया और तमः स्थिति-रूप हैं। इसी में पंचभूत यानी आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा ११ इंद्रियाँ यानी नेत्र, कान, नाक, जिह्वा, त्वक्, (पंच ज्ञानइंद्रियाँ) हस्त, पाद, वाणी, गुदा और उपस्थ (पंच कर्मेंद्रियाँ) और ११ वीं इंद्रिय मन हैं। ये सब पुरुष के भोग और मोक्ष के उद्देश हैं। प्रकृति के चार रूप हैं—विशेष, अविशेष, लिंग मात्र और अलिंग। पंचमहाभूत विशेष रूप हैं, पंचतन्मात्राएँ अविशेष रूप हैं, जिन से पूर्वोक्त विशेषरूप पैदा होते हैं।

पंच ज्ञानेंद्रियाँ, पंच कर्मेंद्रियाँ और मन भी विशेष रूप हैं, जो अहंकार तत्त्व से उत्पन्न होते हैं। अहंकार तत्त्व अविशेष रूप है। महत् लिंग-मात्र है, और अव्यक्त अलिंग।

ये सब तत्त्व सांख्यदर्शन में सविस्तर वर्णित हैं।

द्रष्टा यानी पुरुष—शुद्ध दृक्-शक्ति का नाम पुरुष है। वह न बुद्धि-स्वरूप है, और न बुद्धि-स्वरूप नहीं। पुरुष के समीप प्रकृति है, जिसमें गुण हैं। इन गुणों का द्रष्टा पुरुष है। वह गुणों में तदात्मक नहीं है। वह उन्हें केवल प्रत्यय-रूप से देखता है। पुरुष के देखने के लिये ही यह दृश्यमान संसार हैं। जिस पुरुष को विवेक हो जाता है, उसके लिये प्रकृति नष्ट हो जाती है; लेकिन दूसरे पुरुषों के लिये, जिन्हें अभी विवेक प्राप्त नहीं हुआ, वह ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, यानी नष्ट नहीं होती।

पुरुष-प्रकृति का संयोग और वियोग—पुरुष-प्रकृति का संयोग अविद्या से होता है। इस संयोग से पुरुष और प्रकृति, दोनों की शक्तियों का स्वरूप प्रकट होता है। जब अविद्या जाती रहती है, तो संयोग भी छूट जाता है, और पुरुष को कैवल्य पद प्राप्त हो जाता है। इसका साधन विवेक है। जिस मनुष्य को विवेक प्राप्त हो जाता है। उसकी प्रज्ञा सात प्रकार की हो जाती है। यदि उसे क्लेशों का ज्ञान हो जाता है, उसके क्लेशों के हेतु दूर हो जाते हैं, उसे समाधि द्वारा कैवल्य प्राप्त होता है। उसे ज्ञान के सब साधन प्राप्त हो जाते हैं। उसकी बुद्धि का कार्य समाप्त हो जाता है। उसके गुण भी नष्ट हो

जाते हैं, और फिर उसमें गुणों का प्रवेश नहीं होता। वह पुरुष, जिसे ये सब बातें प्राप्त हो गई हैं, कुशल कहलाता है।

योगांग

योगांगों के अभ्यास से अशुद्धि दूर हो जाती है, और ज्ञान का प्रकाश विवेक-श्रेणी तक पहुँच जाता है। ये आठ हैं—१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान और ८ समाधि।

यम

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी नहीं करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (आवश्यकता के सिवा दानादि का त्याग)। ये पाँच यम हैं। ये सार्वभौमिक व्रत हैं, और जाति, देश, काल और समय के बंधनों से रहित हैं। ये पंच महाव्रत हैं। जब अहिंसा-व्रत परिपक्व हो जाता है, तो वैर का सर्वथा त्याग हो जाता है। सत्य-व्रत पूरा होने से क्रिया और फल परस्पर एक दूसरे के आश्रित हो जाते हैं, यानी सत्य-व्रती जो कुछ कहता है, वही होता है। अस्तेय-व्रत पूरा होने से उसके पास सब प्रकार के रत्न आ जाते हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत के पूर्ण होने से वीर्य-लाभ होता है, और अपरिग्रह-व्रत की सफलता पर जन्म-जन्मांतर का हाल जाना जा सकता है।

इन व्रतों के करने में वितर्क यानी पाप-विचार उठें, तो उन्हें

प्रतिपक्ष भावों से दबाना चाहिए। हिंसादि का करना या कराना या इनके किए जाने में सहायता देना अनुचित है। ये कर्म क्रोध, लोभ, मोह से किए जाते हैं। ये मृदु, मध्य और तीव्र, तीन प्रकार के कर्म हैं, और इनके अनेक प्रकार हो सकते हैं। इस सब का फल अनंत दुःख और अज्ञान है। ऐसे-ऐसे भावों को प्रतिपक्ष-भाव कहते हैं। इन भावों को मन में धरके पाप-विचारों को रोका जाय।

नियम

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-पूजन—ये पाँच नियम हैं।

शौच रखनेवाले को अपनी देह से ग्लानि और दूसरों के संसर्ग से अरुचि होती है; क्योंकि वह देखता है कि मैं बराबर शुद्धि में लगा रहता हूँ, तब भी शरीर बिलकुल शुद्ध नहीं होता—उसमें मलादि दोष बने ही रहते हैं। इस प्रकार उसे शरीर की तुच्छता का ज्ञान होता है। जब वह अपने शरीर से ही ग्लानि करने लगता है, तो दूसरे शरीरों का संसर्ग क्यों करने लगा। शौच से जब सत्व शुद्ध हो जाता है, तो चित्त की उदारता, एकाग्रता, इंद्रिय-जय और आत्म-दर्शन-योग्यता उत्पन्न हो जाती है। (परिशिष्ट २ देखो) संतोष से सर्वश्रेष्ठ सुख मिलता है, तप से अशुद्धि का क्षय होता है, और

शरीर तथा इंद्रियों की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ओंकार का जप करना तथा मोक्ष-मार्ग-संबंधी शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय है। इससे इष्टदेव की प्राप्ति होती है।

ईश्वर-पूजन अथवा ईश्वर में सब भावों को समर्पित करने से समाधि प्राप्त होती है।

आसन

आसन से स्थिर रहने में सुविधा होती है। पूर्ण आसन वही है, जिसके लगाने से बैठने का यत्न सफल हो, और किसी प्रकार की चंचलता न रहे, अभंग समापत्ति तथा समाधि की प्राप्ति हो। जब ठीक आसन लग जाता है, तो सुख-दुःखादि द्वंद्वों के विघ्न नहीं होते। आसन अनेक प्रकार के हैं। व्यास-भाष्य में निम्न-लिखित १३ आसनों के नाम बताकर कहा है कि और भी ऐसे ही आसन हैं। १३ आसन ये हैं—पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दंडासन, सोपाश्रय, पर्यंक, क्रौंचनिषद, हस्तिनिषद, उष्ट्रनिषद, समसंस्थान, स्थिरसुख, यथासुख आदि-आदि। इन आसनों तथा अन्य उपयोगी आसनों का सविस्तर विवरण परिशिष्ट नंबर ४ में दिया है। उसे देखो।

प्राणायाम

जब ठीक आसन लग जाय, तो प्राणायाम करे। श्वास

(भीतर की ओर श्वास) और प्रश्वास (बाहर की ओर श्वास) की गति को बंद करने का नाम प्राणायाम है। यह क्रिया रेचक, पूरक और कुंभक वायुओं द्वारा होती है। जो वायु नाक से बाहर निकाली जाती है, उसे रेचक कहते हैं; जो भीतर की ओर खींची जाती है, उसे पूरक कहते हैं; और जो रोकी जाती है, उसे कुंभक कहते हैं। रेचक, पूरक और कुंभक देश, काल और संख्या के नियमों से बद्ध हैं। रेचक की गति वायु-शून्य स्थान में भूसे या रुई पर एक गज या एक हाथ दूर तक देखी जाती है। पूरक का असर पैर के तलवों पर अथवा सिर पर चींटी के स्पर्श के समान होता है। यह तो देश का उदाहरण हुआ। संख्या का उदाहरण यह है कि ३६ मात्रा का प्राणायाम मृदु है; ७२ मात्रा का प्राणायाम मध्य है; १०८ मात्रा का तीव्र है। काल का उदाहरण यह है कि स्वस्थ मनुष्य के श्वास और प्रश्वास में उतना ही काल लगता है, जितना अपने घुटने पर तीन बार हाथ फेरकर एक बार चुटकी बजाने में लगता है। जिस प्राणायाम में अधिक समय लगे और अधिक दूर तक श्वास का असर हो, वह दीर्घ है, और जब वह बड़ी सूक्ष्म समाधि से जाना जाय, तो सूक्ष्म है।

अभिप्राय यह कि प्राणायाम में रेचक, पूरक, कुंभक वायुओं को देश, काल और संख्या से नियमित किया है।

प्राणायाम से वह आवरण टूट जाता है, जो अध्यात्म-प्रकाश को रोके हुए है, यानी क्लेशादि का विषय दूर हो जाता है। जिस कर्म के कारण बार-बार जन्म लेना पड़ता है, वह क्षीण हो जाता है, उससे शुद्धि प्राप्त होती है, ज्ञान का प्रकाश चमकने लगता है, और मन ध्यान करने योग्य हो जाता है। इस विषय पर अधिक वर्णन परिशिष्ट नं० ५ में देखो।

प्रत्याहार

इंद्रियों का अपने-अपने विषय में न लगना और मन के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार है। इससे इंद्रियाँ बिलकुल वश में हो जाती हैं। जब मन स्थित हो गया, तो इंद्रियाँ भी स्थित हो गईं। जैसे जब रानी मक्खी उड़ती है, तो और सब मक्खियाँ उड़ने लगती हैं, और जब वह बैठती है, तो वे सब बैठ जाती हैं। इसी प्रकार जब मन चलायमान होता है, तो इंद्रियाँ भी चलती हैं, और जब मन स्थिर हो जाता है, तो वे भी चुप हो रहती हैं, यानी अपना-अपना कार्य छोड़ मन का अनुसरण करने लगती हैं। दूसरे शब्दों में चक्षु को देखने के विषय में, कर्ण को सुनने के विषय में, जिह्वा को स्वाद के के विषय में, घ्राण को सूँघने के विषय में, और त्वक् को स्पर्श विषय में न लगने देना। इसी प्रकार कर्मेंद्रियों को अपने-अपने

विषय में न लगने देना और मन-इंद्रिय को भी अपने संकल्प-विकल्प-कार्य से रोककर निश्चल करना।

विभूति पाद

धारणा

चित्त का एक स्थान या एक वस्तु पर जमना धारणा है। जिस वस्तु या देवता का ध्यान करना है, उस पर मन को एकाग्र कर लगाना धारणा है।

ध्यान

जब धारणा निरंतर बनी रहे, और उसमें ध्येय पदार्थ का ज्ञान प्रवाह रूप से बहता रहे, तो वह ध्यान है।

समाधि

जब ध्यान में ध्येय का ही प्रकाश-मात्र दिखाई दे, और अपना स्वरूप लोप हो जाय, तो वह समाधि है। दूसरे शब्दों में जब ध्यान परिपक्व हो जाता है, तो चित्त एकाग्र और स्थिर हो जाता है। उसमें वृत्तियाँ भी अपना काम बंद कर देती हैं। चित्त अपनी ध्येय वस्तु में तदाकार हो जाता है, यानी जिस वस्तु का ध्यान किया जा रहा है, उसी का रूप हो जाता है। इस अवस्था का नाम समाधि है।

संयम

धारणा, ध्यान और समाधि, इन तीनों के एक होने का नाम संयम है।

संयम प्राप्त होने से मनुष्य प्रज्ञा-लोक हो जाता है, यानी ज्यों-ज्यों संयम दृढ़ होता जाता है, त्यों-त्यों समाधि की प्रज्ञा स्पष्ट और अकुंठित प्रकट होती जाती है।

संयम का प्रयोग पहले एक भूमि में होता है, तब दूसरी भूमि में, फिर तीसरी भूमि में। इसी प्रकार क्रमशः बढ़ता जाता है। पहले स्थूल पदार्थों पर संयम होता है, फिर सूक्ष्म पर, फिर इससे भी आगे। सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार समापत्ति, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, संयम के उत्तरोत्तर रूप हैं।

संप्रज्ञात समाधि में यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार की अपेक्षा धारणा, ध्यान, समाधि अधिक अंतरंग हैं, यानी इनके द्वारा ध्येय वस्तु की सिद्धि शीघ्र ही होती है। लेकिन असंप्रज्ञात समाधि में ये बहिरंग ही हैं; क्योंकि यह समाधि इनके अभाव यानी न रहने पर होती है, और तब संप्रज्ञात समाधि अपनी परा काष्ठा पर पहुँच जाती है।

परिणाम

निरोध परिणाम वह है, जिसमें जब चित्त निरोध के क्षण (निरोध के समय) से मिल जाय, चित्त के बाहर जानेवाले संस्कार लुप्त होते जायँ, और उसके निरोध-संस्कार प्रकट होते जायँ। ये दोनों संस्कार चित्त के धर्म हैं। जब इनमें से

पहला धर्म जाता रहे और दूसरा धर्म प्रकट हो जाय, तब निरोध का क्षण होता है, जिसके साथ चित्त का मेल होता है। एक ही चित्त का प्रतिक्षण भिन्न-भिन्न संस्कारों को प्राप्त करना निरोध-परिणाम है। इस अवस्था में चित्त में केवल संस्कार ही रह जाते हैं। इसी को निरोध-समाधि कहते हैं।

निरोध-संस्कारों को उत्पन्न करने के अभ्यास की कुशलता के द्वारा चित्त का प्रवाह शांत होता है, यानी उसमें निरंतर शांति आती है। अगर निरोध-संस्कार मंद है, और बाहरी संस्कार प्रबल, तो निरोध-संस्कार उससे दब जाते हैं। चित्त की सर्वार्थता (चित्त के बँटे होने की अवस्था) के नाश और चित्त की एकाग्रता (एक विषय में लगे रहने की अवस्था) के उदय का नाम चित्त का समाधि-परिणाम है। सर्वार्थता और एकाग्रता चित्त के धर्म हैं।

जब इससे (समाधि परिणाम से) चित्त के शांत (नष्ट), और उदित (प्रकटित) रूप एक-से हो जायँ, तब चित्त का एकाग्रता-परिणाम होता है। इनको भौतिक पदार्थों और इंद्रियों के धर्म, लक्षण और अवस्था कहते हैं।

धर्मी वह है, जो शांत (नष्ट), उदित और बाहर जाने-वाले धर्मों में बना रहे।

क्रम के भिन्न होने से परिणाम भी भिन्न होते हैं। परिणाम तीन प्रकार के होते हैं—धर्म-परिणाम, लक्षण-परिणाम और अवस्था-परिणाम। पृथ्वी से घड़ा बनना धर्म-परिणाम है घड़ा पहले भविष्य-रूप में था, अब वर्तमान रूप में आ गया। यह आगमन ही लक्षण-परिणाम कहा जाता है। जब यह घड़ा भूत या पुराने रूप में चला जाय, तब उसकी अवस्था बदलने का नाम अवस्था-परिणाम है। वास्तव में सब परिणाम एक ही हैं। किंतु धर्म तथा धर्मी के भेद से इनके तीन प्रकार प्रचलित हैं।

नाना प्रकार की विभूतियाँ

धर्म, लक्षण और अवस्था, इन तीनो परिणामों पर संयम करने से भूत-भविष्यत्-काल का ज्ञान प्राप्त होता है। शब्द, अर्थ और प्रत्यय, ये तीनो एक ही दिखाई देते हैं, उनके भेदों पर संयम करने से सब जीवों की बोलियों का ज्ञान हो जाता है। इस विषय में स्फोटवाद-विषयक परिशिष्ट न० ७ देखो।

सम्कारों पर संयम करने से पूर्व जन्मों का हाल मालूम हो जाता है।

प्रत्यय पर संयम करने से—दूसरों के भावों पर संयम करने से—दूसरों के चित्त की बात मालूम हो जाती है।

काया के रूप पर संयम करने से छिप जाने अथवा न दिखाई देने या गायब हो जाने की शक्ति आ जाती है, क्योंकि रूप

पर संयम करने से उसका ज्ञान रुक जाता है, और इस प्रकार प्रकाश के साथ संसर्ग न होने से योगी अंतर्धान हो जाता है।

आयु पर संयम करने से मरण का ज्ञान हो जाता है, अथवा अरिष्टों के द्वारा यही बात मालूम होने लगती है। अरिष्ट शत्रु के समान भय-उत्पादक चिह्न हैं। ये तीन प्रकार के हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। कान बंद करने से अपने शरीर का शब्द न सुनना, आँखें दबाने पर प्रकाश न देखना, यह आध्यात्मिक अरिष्ट है। यमदूतों को देखना, मरे हुए पुरुषों को अकस्मात् देखना, ये आधिभौतिक अरिष्ट हैं। अकस्मात् स्वर्गलोक तथा सिद्धों को देखना अथवा जो कुछ वह अपने समस्त जीवन में देखता रहा है, उसके विपरीत दृश्य देखना, यह आधिदैविक अरिष्ट है। इन अरिष्टों से योगी मृत्यु को निकट उपस्थित जान लेता है।

मैत्री, करुणा और मुदिता, इन भावनाओं पर संयम करने से मैत्री-करुणा-मुदिता रूपी बल प्राप्त होता है। यानी योगी मैत्री-बल से सब जीवों को सुखी बना सकता है, और करुणा से सब जीवों का दुःख दूर कर सकता है। मुदिता बल से वह सब जीवों के साथ न्यायपूर्वक बर्ताव कर सकता है।

जिसके बल के ऊपर संयम करे, उसी का बल प्राप्त कर

सकता है। यानी हाथी के बल पर संयम करने से हाथी का बल प्राप्त हो सकता है। वैनतेय पक्षी, जो सब पक्षियों का राजा है, उसके बल पर संयम करने से उसका बल प्राप्त हो सकता है। वायु के बल पर संयम करने से वायु का बल आ सकता है।

ज्योतिष्मती प्रवृत्ति का प्रयोग करने से सूक्ष्म, गुप्त और दूर स्थित पदार्थों का ज्ञान उत्पन्न होता है। सूर्य पर संयम करने से सब लोकों का ज्ञान हो जाता है। भुवन लोक कितने और कैसे हैं, इसका सविस्तर वर्णन परिशिष्ट नं० ६ में दिया गया। उसे देखो।

चंद्रमा पर संयम करने से तारा-व्यूह का ज्ञान हो जाता है।

ध्रुव तारे पर संयम करने से तारों की चाल का सब हाल मालूम हो जाता है।

नाभि के चक्र पर संयम करने से सारे शरीर के भीतर का हाल जाना जा सकता है। शरीर में वात, पित्त, श्लेष्मा, ये तीन दोष हैं। त्वक, रक्त, मांस, स्नायु, अस्थि (हड्डी), मज्जा, वीर्य, ये सात धातुएँ हैं। पहला धातु दूसरी के बाहर है, और दूसरी तीसरी के। इसी रीति से सब धातुएँ हैं।

कंठ-कूप पर संयम करने से भूख-प्यास कभी नहीं लगती।

जिह्वा के नीचे तंतु है। तंतु के नीचे कंठ है। कंठ के नीचे कंठ-कूप है।

कूर्म नाड़ी में संयम करने से निश्चलता अथवा स्थिरता प्राप्त होती है।

कंठ-कूप के नीचे छाती में कछुए के आकार की नाड़ी है। उसी पर संयम करने से स्थिर पद प्राप्त होता है। यहाँ स्थिर पद से आशय सर्प, मगरादि का-सी स्थिरता से है।

कपाल के भीतर के छिद्र की ज्योति पर संयम करने से सिद्धों के दर्शन होते हैं। सिद्ध पृथिवी और आकाश के बीच में घूमते रहते हैं। इसे ब्रह्म-रंध्र ही कहते हैं।

प्रतिभा से सब प्रकार का ज्ञान हो जाता है।

जैसे सूर्योदय के पहले प्रभा होती है, वैसे ही विवेक ज्ञान उत्पन्न होने के पहले योगी में प्रतिभा नाम की शक्ति उत्पन्न होती है। इसका दूसरा नाम तारक है। इस शक्ति से योगी सब कुछ जान सकता है।

हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान यानी अपने चित्त के संस्कार और वासनाओं का और दूसरों के चित्त की इच्छाओं का ज्ञान हो सकता है। सत्त्व (बुद्धि-तत्त्व) और पुरुष यद्यपि पृथक्-पृथक् हैं, तथापि इन दोनों को एक समझना भोग है। यह भोग दूसरे के लिये है, यानी पुरुष के लिये।

इसके अतिरिक्त अपने स्वरूप का ज्ञान दूसरा है। इस स्वरूप पर संयम करने से पुरुष का ज्ञान होता है।

इस स्वरूप-संयम से प्रातिभ शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे सूक्ष्म, गुप्त एवं दूरस्थ पदार्थों तथा भूत-भविष्यत् का ज्ञान उत्पन्न होता है। इससे, इस संयम से, दिव्य शब्दों का सुनना, दिव्य स्पर्श-ज्ञान, दिव्य दृष्टि, दिव्य रसास्वादन, दिव्य सुगंधि-ज्ञान भी बराबर उत्पन्न होते हैं।

समाधि को प्राप्त योगी के लिये ये सब बाधाएँ हैं; क्योंकि उसको समाधि में जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसमें ये रुकावट डालनेवाली हैं; लेकिन जिस योगी को यह अवस्था प्राप्त नहीं हुई, उसके लिये ये सिद्धियाँ हैं। कर्म-बंधन से चित्त शरीर में ठंढा रहता है, लेकिन कर्म-बंधन टूटने से और यह जानने से कि मन का शरीर के साथ क्या संबंध है, योगी अपने मन को अपने शरीर से निकालकर दूसरे शरीर में डाल सकता है। मन के साथ इंद्रियाँ भी दूसरे शरीर में पीछे-पीछे चली जाती हैं; क्योंकि इंद्रियाँ मन के अधीन हैं। जो मन करता है, उसी का अनुकरण इंद्रियाँ करने लगती हैं। जैसे रानी मक्खी के पीछे सब मक्खियाँ काम करती हैं। वह आराम करे, तो वे भी आराम करने लगती हैं। वह चले, तो वे भी चलने लगती हैं। इसी प्रकार इंद्रियाँ भी मन का पीछा करती हैं।

उदान पर जय करने से जल, कीचड़, कंटक आदि के साथ असंग हो जाता है, अथवा योगी मृत्यु के समय अर्चिरादि द्वारा उत्क्रांति-मार्ग को भी प्राप्त कर सकता है।

समान पर जय प्राप्त करने से अग्नि-जैसा तेजोरूप प्राप्त कर सकता है। नाक के अग्र-भाग से हृदयांत तक प्राण-वायु रहती है। हृदयांत से नाभि तक समान-वायु है। नाभि से पैरों के तलुवों तक अपान-वायु है। उदान नाक के अग्र-भाग से सिर तक है। व्यान-वायु सब शरीर में घूमती रहती है। इन सब में प्राण-वायु मुख्य है; क्योंकि प्राण-वायु के निकलने पर ये सब वायुएँ निकल जाती हैं।

आकाश और शब्द के संबंध पर संयम करने से दिव्य श्रवण-शक्ति हो जाती है।

आकाश और शरीर के संबंध पर संयम करने से, रुई के समान हलका हो जाने की सिद्धि प्राप्त करने से, योगी आकाश में भ्रमण कर सकता है। सब शरीर आकाश में ही रहते हैं। इन दोनों का संबंध जानकर और शरीर हलके करने की सिद्धि प्राप्त करके योगी आकाश में भ्रमण करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। वह अपने पैरों से जल पर चल सकता है। वह मकरी के जाले पर चल सकता है। वह प्रकाश की किरणों पर चल सकता है।

अपने शरीर से बाहर निकलकर कार्य करना महा विदेह वृत्ति कहलाती है। उससे वे सब रुकावटें जाती रहती हैं, जो पुरुष के शुद्ध प्रकाश को रोकती हैं। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये पहले अपने शरीर में रहते हुए शरीर के बाहर किसी वस्तु पर संयम करना होता है। जब यह कल्पित विदेह वृत्ति हो जाती है, तो महा विदेह वृत्ति की प्राप्ति भी हो जाती है। इसके द्वारा योगी दूसरे शरीरों में प्रवेश करता है। इसी के द्वारा क्लेश, कर्म और कर्मफल का पर्दा, जो स्वच्छ सात्त्विक बुद्धि पर पड़ा है, और उसके प्रकाश को रोकता है, दूर हो जाता है।

स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्व पर संयम करने से भूत-जय होती है।

पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश के विशेष रूप गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द हैं। ये भूतों के पहले रूप हैं।

पृथ्वी में आकार, जल में चिकनाई, तेज में गर्मी, वायु में प्रेरणा करना और आकाश में चारों ओर गति, ये भूतों के दूसरे रूप हैं। सामान्य और विशेष गुणों के समुदाय को द्रव्य कहते हैं। इसी को स्वरूप कहा है।

पंचभूतों की तन्मात्राएँ ये ही सूक्ष्म रूप हैं।

सत्त्व, रज, तम गुण अन्वय हैं।

गुणों के संयोग से भोग और मोक्ष का आशय सिद्ध है। पाँचों

तत्त्वों (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) और उनके पूर्वोक्त पाँच रूपों पर संयम करने से प्रत्येक रूप पर अधिकार हो जाता है। इन पाँचों पर विजय प्राप्त करने से योगी भूत-विजयी हो जाता है। जैसे गउएँ अपने बच्चों के पीछे-पीछे जाती हैं, वैसे ही भूतों की शक्तियाँ योगी के मन के पीछे-पीछे दौड़ती हैं।

आठ सिद्धियाँ

इस संयम से अणिमा आदि सिद्धियाँ, काय-संपत् और उनके धर्मों से अनभिघात उत्पन्न होते हैं।

अणिमादि सिद्धियाँ ८ हैं—

(१) अणिमा—परमाणु के समान छोटा होना।

(२) लघिमा—हलका होना।

(३) महिमा—बड़ा होना।

(४) प्राप्ति—चंद्रमा तक को उँगली के अग्र-भाग से स्पर्श करना।

(५) प्राकाम्य—इच्छानुसार काम करना। इच्छा पूरी होने में कोई रुकावट न रहना। जल में गोता लगाने के समान पृथ्वी के भीतर गोता लगाना।

(६) वशित्व—भूत और भूतनिर्मित पदार्थों पर जय और शासन प्राप्त करना।

(७) ईशित्व—भूत और भौतिकों के प्रकट होने, छिप जाने और उनके इकट्ठे होने पर पूर्ण अधिकार करना।

(८) कामावसायित्व—अपनी इच्छानुसार पंचभूतों का रूप कर लेना।

इनमें से पहली चार सिद्धियाँ भूतों के स्थूल रूप पर संयम करने से प्राप्त होती हैं।

पाँचवी सिद्धि भूतों के द्रव्य-स्वरूप पर संयम करने से प्राप्त होती है।

छटी सिद्धि भूतों के सूक्ष्म रूप पर संयम से होती है।

सातवीं सिद्धि अन्वय-रूप पर संयम करने से मिलती है। मूल प्रकृति पर जय पाने से योगी भूत और भौतिक पदार्थों के उत्पन्न होने, नष्ट होने तथा वर्तमान अवस्था में रहने या न रहने पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है।

आठवीं सिद्धि भूतों के पाँचवें रूप पर संयम करने से प्राप्त होती है। जो योगी गुणों के अर्थ पर अधिकार कर लेता है, वह चाहे जिस वस्तु से काम ले सकता है। यदि वह चाहे कि विष अमृत का काम दे, तो ऐसा ही होगा। वह विष खाने पर भी जीता रहेगा।

अनभिघात का यह मतलब है कि यदि योगी पत्थर में प्रवेश करना चाहे, तो कर सकता है। वह जल में जाने से भीगता नहीं,

अग्नि उसे जलाती नहीं, हवा उसे चला नहीं सकती, आकाश में भी उसका शरीर अदृष्ट रहता है। उसे सिद्ध लोग भी नहीं देख सकते अर्थात् जिस-जिस भूत में जो धर्म है, वह उस पर कुछ असर नहीं कर सकता। काय-संपत् का अर्थ है कि शरीर में रूप, लावण्य, बल और वज्र को समान कठोरता या दृढ़ता होना।

मधुप्रतीका और विशोका सिद्धियाँ

यह तो हुआ भूत-जय, अब इंद्रियाँ-जय सुनिए।

ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व पर संयम करने से इंद्रिय-जय होता है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध-विषयों में इंद्रियों की वृत्ति का नाम ग्रहण है। बुद्धि-तत्त्व ही इंद्रियों का स्वरूप है।

अहंकार-तत्त्व इंद्रियों का तीसरा रूप है।

इंद्रियों के गुण—सत्त्व, रज, तम—यह चौथा रूप है।

पुरुष का उद्देश पूर्ण करना उनका पाँचवाँ रूप है। इंद्रियों के इन पाँचो रूपों पर विजय प्राप्त करने से योगी को पूर्ण इंद्रिय-जय प्राप्त हो जाता है।

इससे मन की तेजी, विना इंद्रियों के ज्ञान और प्रकृति के सब विकारों पर वशित्व प्राप्त होता है।

ये तीनों सिद्धियाँ मधुप्रतीका कहलाती हैं। पंच

ज्ञानेंद्रियों के स्वरूप पर जय प्राप्त करने से ये सिद्धियाँ आती हैं।

जो पुरुष और बुद्धि सत्त्व की भिन्नता जान लेता है, वह सब भावों और सब ज्ञानों पर आधिपत्य प्राप्त कर लेता है। इन दो सिद्धियों को विशोका कहते हैं।

वैराग्य से कर्म-बंधन के विनष्ट होने पर कैवल्य-पद प्राप्त होता है।

जब योगी इस अवस्था को प्राप्त हो जाता है, तो स्थानों के पति देवता उसे बुलाते हैं, और अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाते हैं; पर उसे इस पर कुछ ध्यान नहीं देना चाहिए। न तो वह इस पर प्रसन्न ही हो, और न मोह करे; क्योंकि अनिष्ट वस्तु के साथ संग हो जाना फिर संभव है। जिससे उसकी सब की हुई मेहनत व्यर्थ हो जायगी। इसलिये योगी को सावधान रहना चाहिए। लोभ में न आना चाहिए और न अपनी सफलता पर फूलकर कुप्पा हो जाना चाहिए।

क्षण और उनके क्रम पर संयम करने से विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है, अर्थात् वह ज्ञान, जो विवेक से उत्पन्न हुआ है। क्षण समय का सबसे छोटा हिस्सा है।

इस ज्ञान से ऐसी दो वस्तुओं की भिन्नता भी जानी जा सकती है, जिनकी जाति एक हो। दोनो के लक्षण भी एक

हों, और दोनो का स्थान या देश भी एक हो। साधारणतः समान वस्तुओं में भेद इन्हीं तीन बातों से जाना जाता है। और, जब इनमें से कोई भी न हो, तो भेद जानना असंभव है; लेकिन वह योगी, जिसने काल के क्षणों और उनके क्रमों पर संयम किया है, और जिसके द्वारा उसको विवेकज ज्ञान हो गया, इस भेद को बिना इन बातों के भी जान सकता है। एक गौ है, दूसरी घोड़ी। यहाँ गौ और घोड़ी भिन्न-भिन्न जातियों की होने से पहचानी जा सकती हैं। एक काली आँखों की गौ है, और दूसरी कंजी आँखों की। यहाँ दोनो की जाति एक है, लेकिन काली आँख और कंजी आँख, ये लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। इसलिये लक्षण भिन्न होने से दोनो का भेद मालूम हो सकता है। दो आँवले एक-से हैं, यानी एक ही जाति के हैं, और दोनो के लक्षण भी एक-से ही हैं; लेकिन एक आगे धरा है, और दूसरा पीछे। यहाँ स्थान भिन्न होने से दोनो में अंतर बताया जा सकता है। लेकिन अगर कोई आगे धरे हुए आँवले को पीछे धर दे, और पीछेवाले को आगे धर दे, और बतानेवाले ने यह हेर-फेर नहीं देखा, तो वह उन दोनो का अंतर नहीं बता सकता। वह यह नहीं कह सकता कि यह आँवला पहला है, और वह दूसरा; क्योंकि स्थान की भिन्नता से उसने पहले दोनो में अंतर बताया था, और अब यह

भिन्नता रही नहीं, अतएव उसके लिये यह अंतर बताना असंभव है। योगी अपने विवेकज ज्ञान के द्वारा इस अंतर को भी बता सकता है। विवेकज ज्ञान प्रातिभ है, यानी अपनी प्रतिभा से ही उत्पन्न होता है, उपदेश करने से नहीं। कोई जानी हुई वस्तु ऐसी नहीं, जो उसका विषय नहीं हो सकती, यानी उससे सब चीज़ें जानी जा सकती हैं। उससे वस्तुओं की सब अवस्थाएँ भी जानी जा सकती हैं—यानी पहले वे कैसी थीं, अब कैसी हैं और भविष्य में कैसी होंगी। उस ज्ञान में आगे-पीछे का कोई क्रम भी नहीं, यानी वह एक क्षण में ही सब चीज़ें और सब चीज़ों की सब अवस्थाओं को ग्रहण कर लेता है। यह ज्ञान परिपूर्ण है।

चार प्रकार के योगी

योगी चार प्रकार के होते हैं—

(१) प्रथम कल्पिक—वह योगी, जिसमें वस्तुओं के ज्ञान का प्रकाश-जैसे दूसरों का मन आदि का ज्ञान—अभी हुआ ही है। वह अभी पक्का नहीं हुआ।

(२) मधुभूमिक—वह योगी, जिसे ऋतंभरा-प्रज्ञा प्राप्त हो गई है। वह भूत और इंद्रियों पर जय-प्राप्ति का अभिलाषी है।

(३) प्रज्ञाज्योति—वह योगी, जिसे भूतों और इंद्रियों पर जय प्राप्त हो गई है।

(४) अतिक्रांत भावनीय—वह योगी, जो शरीर में रहते हुए भी सर्वथा मुक्त है। यह उसका अंतिम शरीर है। उसका एक-मात्र लक्ष्य प्रधान में लीन हो जाना है।

इनमें से दूसरे नंबर के योगी को देवता लोग बुलाते और प्रलोभन देते हैं।

कैवल्य-प्राप्ति

जब बुद्धि-तत्त्व और पुरुष की एक-सी शुद्धि हो जाती है, तब कैवल्य की प्राप्ति होती है।

जब बुद्धि से रज और तम का मेल हट जाता है, उसका पूरा लक्ष्य पुरुष की प्रतीत रहती है, और क्लेशों के सब बीज दग्ध हो जाते हैं, तब उसकी यानी बुद्धि-सत्त्व की शुद्धि पुरुष की शुद्धि के समान होती है। इस अवस्था में पुरुष को शुद्धि उस भोग का अभाव है, जो उसमें कल्पित किया हुआ था। इस अवस्था में कैवल्य-प्राप्ति होती है, चाहे यह आचार्य को हो, चाहे शिष्य को, चाहे विवेकज ज्ञानी को हो, चाहे अविवेकज ज्ञानी को। जिसके क्लेश के बीज का नाश हो गया है, उसे किसी ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती। जब क्लेश नहीं रहे, तो कर्मफल भी नहीं रहा। गुणों का कार्य भी समाप्त हो जाता है, और वे पुरुष के सामने नहीं आते। तब पुरुष अपने रूप की अमल ज्योति में हो जाता है और केवली यानी अकेला रह जाता है।

४ कैवल्य पाद

सिद्धियों की प्राप्ति पाँच प्रकार से होती है

इससे पहले पाद में जिन सिद्धियों का उल्लेख हुआ है, वे पाँच प्रकार से प्राप्त होती हैं—

(१) किसी-किसी महात्मा को ये सिद्धियाँ जन्म से ही सिद्ध होती हैं, जो पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।

(२) कभी-कभी अद्भुत ओषधियों द्वारा भी कुछ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यदि कोई मनुष्य असुरलोक में पहुँच जाय, और वहाँ कोई असुर या अप्सरा कोई ऐसी ओषधि खिला दे, जिससे वह मनुष्य बलवान् और नवयुवक हो जाय, तथा बहुत-सी व्याधियों से हमेशा के लिये मुक्त हो जाय, तो यह उपाय भी सिद्धि-प्राप्ति का है।

(३) मंत्रों द्वारा सिद्ध की हुई सिद्धियाँ, जैसे आकाश में चलना, शरीर को छोटा-बड़ा करना आदि।

(४) तपोबल द्वारा प्राप्त सिद्धियाँ, जैसे इच्छानुसार रूप लेकर अपनी कामनाओं को पूरा करना, जहाँ चाहे वहाँ चले जाना इत्यादि।

(५) समाधि द्वारा प्राप्त सिद्धियाँ, जिनका पहले उल्लेख हो चुका है।

देह और मन के निर्माणों की क्रिया

जब अपना देह छोड़कर दूसरा देह धारण करना होता

है, तो यह उद्देश्य प्रकृति के अंशों को पूरा करने से होता है। बच्चा बनना, वृद्ध हो जाना, अन्य जीव-योनियों में प्रवेश करना, इत्यादि सब कार्यों में प्रकृति के अंशों को पूरा करना होता है। प्राकृतिक शक्तियों के पूर्ण-विकास होने में जो रुकावटें हैं, उन्हें योगी हटा देता है, न कि वह फिर जन्म लेता है या प्रकृति के साधारण नियमों का पालन करता है। जैसे किसान खेत की एक क्यारी से दूसरी क्यारी में मिट्टी हटाकर पानी पहुँचा देता है, वैसे ही योगी प्रकृति की गुप्त शक्तियों को अपने प्रभाव से खोल देता है, और जिस रूप को चाहे, उसे धारण कर लेता है। निर्माण किए हुए शरीरों में वह अहंकार-तत्त्व के द्वारा निर्मित चित्त उत्पन्न कर लेता है—यानी जब कोई योगी दूसरे शरीर धारण करता है, तो उसे उन शरीरों के लिये पृथक्-पृथक् मनों की भी आवश्यकता पड़ती है। वह अहंकार-तत्त्व के प्रभाव से पृथक्-पृथक् शरीरों में पृथक्-पृथक् मन उत्पन्न कर लेता है। ये सब मन उसके असली मन के अधीन रहते हैं। वह जैसा चाहता है, वैसा ही काम ये मन करते हैं। ये मन काम तो पृथक्-पृथक् करते हैं, लेकिन रहते हैं योगी के असली मन के अधीन। जिन मनों को योगी अपनी सिद्धि द्वारा उत्पन्न करता है, वे पाँच प्रकार के हैं, जो पाँच प्रकार की सिद्धियों से संबंध रखते हैं। इनमें ध्यान द्वारा उत्पन्न किया हुआ मन

अनाशय होता है, यानो इसमें रागादि प्रवृत्तियाँ नहीं होतीं और न वह पुण्य-पाप-कर्मों के संबंध में आता है; क्योंकि योगी के कर्म नष्ट हो जाते हैं, और इनके नष्ट होने पर वासनाओं के संस्कार भी नष्ट हो जाते हैं।

कर्म

मनुष्यों के कर्मों का वर्ण चार प्रकार का होता है—काला, सफ़ेद, काला-सफ़ेद और न काला और न सफ़ेद। दुराचारी और दुष्ट मनुष्यों के कर्म काले रंग के होते हैं। स्वाध्याय और जप करनेवाले धार्मिक मनुष्यों के कर्म सफ़ेद रंग के होते हैं। ऐसे मनुष्य, जो कभी पुण्य और कभी पाप करते हैं, जैसे साधारण संसारी मनुष्य, उनके कर्मों का रंग काला-सफ़ेद होता है। लेकिन संन्यासियों के कर्मों का रंग न काला होता है, न सफेद; क्योंकि उनके क्लेश नष्ट हो गए हैं, और उन्हें किसी बात की इच्छा नहीं रही। कर्मों के रंग प्रकृति के सत्त्व, रज और तमोगुणों के रंग हैं। सत्वगुण सफ़ेद है, तमोगुण काला है और रजोगुण काला-सफ़ेद। जिसमें कोई गुण नहीं रहा, उसके कर्मों का रंग न काला है, न सफ़ेद। योगियों के कर्म, विशेषतः जीवन्मुक्त-अवस्था में, निष्काम होते हैं, इसलिये ये सब गुणों से शून्य होते हैं। उनमें सफ़ेद-काले रंग के भेद की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

कर्मफल और वासनाएँ

जैसा कर्मफल होने को होता है, वैसी ही वासनाओं का उदय होता है। यदि कोई कर्मफल से देवता होने को है, तो वेही वासनाएँ विकसित होंगी, जिनसे वह देवता बनें, न कि वे वासनाएँ, जिनसे वह नरक को जाय। यदि ऐसी वासनाएँ उसमें हैं, तो वे अभी गुप्त ही पड़ी रहेंगी। जब इनका समय आवेगा, तब उदित होंगी।

स्मृति और संस्कारों का रूप एक-सा है। यही कारण है कि जाति, देश और काल की भिन्नता रहने पर भी अंतर नहीं रहता। किसी को किसी कर्मफल से बिल्ली होना है, तो यह कर्मफल उन्हीं संस्कारों द्वारा होगा, जो उसे बिल्ली बना सकते हैं। यदि बिल्ली बनानेवाले संस्कारों के बीच में काल, देश और जाति का भेद आ गया है, तो इनका कुछ प्रभाव न होगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी जीव ने किसी जन्म में बिल्ली होने के संस्कार बनाए थे। वे संस्कार उस जीव में गुप्त-रूप से बने रहे। दूसरे जन्म में वह जीव किसी और देश और अन्य जाति में पैदा हुआ, यानी बैल बना, तो बिल्ली बनने के संस्कार, जो उसने पहले जन्म में बनाए थे, वैसेही गुप्त पड़े रहे, उनसे कुछ काम न पड़ा। इसी प्रकार यह जीव अनेक जन्म धारण करता है, और इसमें हजारों

वर्षों का समय व्यतीत हो गया ; पर बिल्ली बननेवाले संस्कारों का अभी कुछ काम न पड़ा। अब अनेक जन्म-जन्मांतरों के पीछे वह कर्मफल परिपक्व हुआ, जिसका परिणाम बिल्ली बनना है, तो इस समय उन्हीं वासनाओं का उदय होगा, जो इस कर्मफल को सिद्ध कर सकती हैं। इनके विकसित होते ही वह जीव बिल्ली बन जायगा। यह बात याद रहे कि जिस जन्म में उसने बिल्ली होने के संस्कार बनाए थे, उसे अब हजारों वर्ष हो गए। जब से यह जीव अनेक देशों और अनेक जातियों में जन्म ले चुका ; पर वे संस्कार अब तक बिना फल के ही चले आए थे। अब उनका कर्म-विपाक हो गया है, और उसे बिल्ली होना आवश्यक हो गया है। उक्त वाक्यों का यही आशय है। बिल्ली-शरीर में बिल्ली अवस्था के अनुसार वासनाएँ होंगी, मनुष्य-देहानुसार नहीं। स्मृति संस्कारों से होती है, और संस्कार स्मृति से होते हैं। जब जैसा कर्म-विपाक होगा, वैसे ही संस्कारों का उदय होगा, और वैसी ही स्मृति होगी, चाहे इनमें देश-काल-जाति का कितना ही लंबा अंतर क्यों न पड़ गया हो।

संस्कार

संस्कारों की उत्पत्ति का कोई आदि-काल नहीं है ; क्योंकि जीवन की इच्छा सर्वदा ही रहती है, कभी बंद नहीं होती।

जब इच्छा अनादि है, तो संस्कार भी अनादि हैं; और बराबर उत्पन्न होते रहते हैं। हेतु, फल, आश्रय और अवलंबन, इन चारो बंधनों से संस्कार बँधे रहते हैं। जब इन चारो का नाश हो जाता है, तो संस्कारों का नाश हो जाता है।

हेतु क्या है, सो सुनिए। धर्म से सुख होता है, अधर्म से दुःख। सुख से राग उत्पन्न होता है और दुःख से द्वेष। इनसे प्रयत्न होता है। प्रयत्न से मनुष्य मन-वचन-काय द्वारा दूसरों का उपकार या अपकार करता है। इससे फिर धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, राग, द्वेषादि उत्पन्न होते हैं। संसार-चक्र इसी तरह चलता रहता है। इसको चलानेवाली अविद्या है, जो सब क्लेशों की जड़ है। यही संस्कारों का हेतु बंधन है।

फल वह है, जिसको लक्ष्य कर धर्मादि की उत्पत्ति होती है।

आश्रय मन है, जहाँ वासनाएँ रहती हैं। जिस मन का कार्य हो चुका है, उसमें वासनाएँ नहीं रहतीं।

वासनाओं का अवलंबन वह वस्तु है, जिसके रहने से वासनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जो वस्तु है, उसका नाश नहीं है; जो नहीं है, उसका अभाव नहीं।

धर्म-धर्मी भूत और भविष्य का स्वरूप है। धर्मों के होने के मार्गों का भेद है।

भूत वह है, जो हो चुका है। भविष्य वह है, जो होगा।

और, वर्तमान वह है, जो हो रहा है। ये तीनो ज्ञान के विषय हैं। जो ज्ञान का विषय है, उसका स्वरूप भी है, इसलिये भूत, भविष्य, दोनो का स्वरूप है। यदि यह नहीं होता, तो ये जाने भी नहीं जाते; यानी ये ज्ञान के विषय न होते।

धर्मी में धर्म अनेक प्रकार से रहते हैं, और इस कारण धर्मों का विकास-क्रम पृथक्-पृथक् होता है। यह बात जरूरी नहीं कि जो रूप वर्तमान का हो, वही भूत और भविष्य का भी हो। भविष्य का रूप अभी प्रकट नहीं हुआ, भूत का रूप हो चुका है, वर्तमान का रूप हो रहा है। जब तक धर्मी का एक रूप विकसित है, तब तक उसके दूसरे रूप उसमें गुप्त-रूप से हैं। आशय यह कि प्रत्येक वस्तु तीन रूप में रहती है—यानी भूत, भविष्यत् और वर्तमान में।

धर्म व्यक्त, सूक्ष्म और गुणवाले होते हैं। वर्तमान में धर्मों का व्यक्त रूप है, और भूत और भविष्यत् में सूक्ष्म रूप। गुण तीन हैं—सत्त्व, रज और तम। और, प्रत्येक गुण के दो रूप हैं—व्यक्त (प्रकट)। और सूक्ष्म (अप्रकट)। इस प्रकार गुणों के छः रूप हैं। धर्मी में गुण भी रहते हैं। इस प्रकार संसार की सब वस्तुओं में, जिनमें धर्म हैं, तीनो गुण अपने छहो रूपों में रहते हैं।

सब वस्तुओं धर्म रहते हैं। धर्मों में गुण रहते हैं। गुण

तीन हैं। प्रत्येक गुण व्यक्त और सूक्ष्म रूपों में रहता है। इस तरह सब वस्तुओं में उनके धर्मों द्वारा तीनों गुण अपने छः रूपों में रहते हैं।

किसी की शंका यह थी कि वस्तु में धर्म वर्तमान रूप में ही रहता है, भूत और भविष्यत्-रूप में नहीं रहता। उसका उत्तर है कि यह बात नहीं। धर्मों के रहने का एक मार्ग नहीं, अनेक मार्ग हैं। कभी तो वे प्रकट रूप में रहते हैं, और कभी सूक्ष्म रूप में। वर्तमान में प्रकट रूप होता है, और भूत, भविष्यत् में सूक्ष्म रूप। इस सब तर्क से यह सिद्ध किया है कि वासनाएँ भूत और भविष्यत् काल में सूक्ष्म-रूप से रहती हैं, और वर्तमान में व्यक्त-रूप से, यानी जब कर्मफल होने को होता है, तो वासनाओं का विकास होता है, जो उनका वर्तमान रूप होता है। इस विषय में तीसरे पाद का १३ वाँ सूत्र देखो।

वस्तु तत्त्व

विज्ञानवादी बौद्धों का कथन है कि बाहरी वस्तु कुछ नहीं है; जो कुछ है, वह चित्त ही है। वस्तु ज्ञान-सहचर है। जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ वस्तु नहीं। ज्ञान के सिवा वस्तु कोई चीज नहीं है। अलबत्ता स्वप्नादि ज्ञान के लिये वस्तु के साथ रहना जरूरी नहीं है। बाहरी वस्तु जड़ है। चैतन्य के

बिना उसका भाव होना असंभव है। ज्ञान चैतन्य है, इस-लिये वह अकेला रह सकता है; बाहरी वस्तु, जो जड़ है, नहीं रह सकती। ये लोग कहते हैं कि जो ज्ञान किसी क्रिया से जाना जाता है, वह ज्ञान से भिन्न नहीं है। जैसे ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है। पंचभूत और भौतिक पदार्थ ज्ञान-क्रिया द्वारा जाने जाते हैं, इसलिये वे ज्ञान से भिन्न नहीं हैं।

इसके उत्तर में योगशास्त्र कहता है कि यह बात नहीं है। बाहरी वस्तु पृथक् है, और उसका ज्ञान पृथक् है, इस पक्ष को निम्न-लिखित युक्तियों से सिद्ध किया है—

१—वस्तुओं का एक परिणाम होता है। गाय, बैल, घोड़ा, हाथी आदि नमक की खान में डालने से नमक हो जाते हैं।

२—पृथक्-पृथक् चित्त में पृथक्-पृथक् भाव एक ही वस्तु से होते हैं। एक ही स्त्री है, कोई उससे प्रेम करता है, कोई उससे घृणा करता है, किसी को वह सुंदर दिखाई देती है, किसी को बुरी। अगर वस्तु का अस्तित्व न होता, तो ये पृथक्-पृथक् भाव कैसे होते।

३—यदि कोई वस्तु किसी के सामने धरी है, और वह उसे न देखे, तो क्या वह वस्तु नहीं है? एक घड़ा है, वह एक मनुष्य के सामने धरा है। उसका चित्त बटा हुआ है, और वह उसे नहीं देखता, तो क्या घड़ा नहीं है? यदि वही मनुष्य

उसे फिर देख लें, तो क्या यह वस्तु, जो पहले नहीं थी, अब उत्पन्न हो गई ?

४—यदि किसी वस्तु का अग्र-भाग ही दिखाई दे, तो क्या उसका पीछे का तथा नीचे का भाग, जो नहीं दिखाई देता था, नहीं है ?

५—यदि यह कहो कि जब वस्तु को देखा तभी उसकी सृष्टि हुई, वह पहले नहीं थी और न पीछे रहेगी, तो यह बात भी ग़लत है ; क्योंकि मन अनेक हैं, और एक वस्तु एक ही क्षण नहीं दिखाई देती। उसे अनेक मनुष्य अनेक क्षणों में देखते हैं।

इन सब युक्तियों से यही सिद्ध है कि चित्त और वस्तु, पृथक्-पृथक् वस्तुएँ हैं। दोनो एक नहीं हैं, जैसा कि विज्ञानवादी बौद्ध लोग कहते हैं।

चित्त-सत्ता

इन्हीं बौद्धों का दूसरा तर्क यह है कि चित्त स्वयं प्रकाश-रूप है, और वस्तु-प्रकाशक भी है, जैसे अग्नि जो स्वयं प्रकाश-रूप है, और दूसरी वस्तुओं—घास फूस आदि—को प्रकाशित करती है। ये लोग यह भी कहते हैं कि एक चित्त दूसरे चित्त से जाना जा सकता है।

इस तर्क का खंडन योगशास्त्र इस प्रकार करता है—

१—चित्त इंद्रियों के समान ज्ञेय पदार्थ है। जो ज्ञेय है, वह ज्ञाता नहीं हो सकता। इसलिये वह स्वयं प्रकाश-रूप नहीं है।

२—एक ही समय में दो बातों को धारणा नहीं हो सकती, यानी अपने स्वभाव की और अन्य वस्तुओं के स्वभाव की। इसलिये चित्त न स्वयं प्रकाशक है, और न पर-प्रकाशक।

३—यदि चित्त पर-प्रकाशक हो, तो वस्तु का स्वभाव जाता रहेगा; लेकिन यह बात होती नहीं।

४—यदि एक चित्त दूसरे चित्त से जाना जाय, तो बुद्धियों का संघट्ट हो जायगा, जिससे स्मृति-भ्रम होगा।

इस खंडन पर बौद्ध कहते हैं कि जब चित्त न स्वप्रकाशक है और न पर-प्रकाशक, और न अन्य चित्त से जाना जाता है, तो उसका भोग पुरुष या आत्मा कैसे करेगा ?

इसका उत्तर है कि जब चित्त में पुरुष का आभास होता है, तब पुरुष उसे जान लेता, यानी उसका भोग करता है।

योग-दर्शन के अनुसार चित्त का रूप यह है—

१—चित्त परिणामशील है। इसमें परिवर्तन होता रहता है। जब चित्त में किसी वस्तु का रंग पड़ता है, तब वह उसे जान लेता है। जब उसमें ऐसा कोई रंग नहीं पड़ता, तो वह उस वस्तु को नहीं जानता। यह बात उसके परिणाम-शील

होने के कारण है। जिसमें परिणाम नहीं है, जैसे पुरुष में, तो वह चित्त की सब वृत्तियों को सदैव जान लेता है। पुरुष अन्य वस्तु की तरह नहीं जाना जा सकता। अन्य वस्तु तो चित्त पर अपना रंग डालने से जानी जाती है; पर पुरुष इस प्रकार से नहीं।

२—ज्ञानेंद्रियों के समान ज्ञेय पदार्थ होने से चित्त स्वप्रकाशक नहीं है। उसमें अपना आभास नहीं है।

३—न वह स्वप्रकाशक है और न पर-प्रकाशक।

४—न वह दूसरे चित्त से जाना जाता है।

५—जब चित्त में पुरुष का आभास होता है, तब पुरुष उसे जानता यानी उसका भोग करता है। पुरुष चलायमान नहीं है, पर चलायमान चित्त पर जब उसका आभास पड़ता है, तो वह उसे अपनी ही बुद्धि समझता है। चंद्रमा का जल में प्रकाश लहरों के कारण चलता मालूम होता है, असल में चंद्रमा स्थित है। इस प्रकार पुरुष के अचलायमान रहने पर भी, चित्त, जिसमें पुरुष का आभास पड़ा है, अपनी चंचलता और वृत्ति से पुरुष को भी चलता हुआ प्रकट करता है, और यह मालूम होता है कि पुरुष उसका अनुकरण कर रहा है। यानी जैसे चित्त कार्य कर रहा है, वैसे पुरुष भी कर रहा है; लेकिन वास्तव में यह बात नहीं है, पुरुष निश्चल है, चित्त ही

चंचल है। इस प्रकार चित्त पुरुष को वस्तुओं का भोग कराता है। इसलिये यह कहा है कि पुरुष स्वयं नहीं चलता, पर बुद्धि के आकार बदलने से वह अपनी बुद्धि जानता है।

कल्पना करो कि अंधकार में एक लैंप जल रहा है। उसके सामने एक कपड़ा टँका है। इस कपड़े पर लैंप की रोशनी भी है, और उसकी परछाहीं भी। यह कपड़ा उस लैंप के आगे घूम रहा है। इस घूमते हुए कपड़े के साथ लैंप की परछाहीं भी घूमती है; पर लैंप एक स्थान में वैसे ही स्थित है। यहाँ लैंप की जगह पुरुष को समझो, कपड़े की जगह चित्त को, और लैंप की रोशनी और परछाहीं की जगह पुरुष के आभास को। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुरुष वास्तव में भोक्ता नहीं है, पर चित्त के ऊपर उसका आभास पड़ता है, और वह चित्त के परिणामों के साथ घूमता है, तो पुरुष को यह मालूम होता है कि मैं ही घूम रहा हूँ, और इन सब चीजों का भोग कर रहा हूँ। चित्त ही पुरुष को भोग कराता है; वह स्वयं नहीं करता।

६—चित्त पर वस्तु का रंग भी पड़ता है, और पुरुष का रंग भी, यानी उस पर बाहर से वस्तु का रंग पड़ता है, और भीतर से पुरुष का, इसलिये वह सर्वार्थ है, यानी सब विषयों से संबंध रखता है। वह जड़ भी है और चैतन्य भी। बाहरी वस्तुओं के

संबंध से जड़ है, और पुरुष के आभास से चैतन्य। वह दोनो है; लेकिन वास्तव में जड़ ही है। पुरुष के आभास से उसमें चैतन्य दिखाई देता है।

७—चित्त पुरुष के लिये ही होता है, जैसे घर मनुष्य के लिये; क्योंकि उसमें अनेक वासनाएँ रहती हैं, जिनका भोग पुरुष के लिये है। वह बहुत चीज़ों से मिलकर काम करता है।

८—चित्त पुरुष से पृथक् है; पुरुष के आभास से चैतन्य दिखाई देता है।

अब सूत्रकार और बात कहते हैं—

जिसे पुरुष और प्रकृति में भेद मालूम हो गया है, उसे आत्मा के भाव—उसका स्वभाव और संबंध—जानने की आवश्कता नहीं रहती। उसका मन विवेक की तरफ़ झुकता और कैवल्य-ज्ञान की ओर जाता है।

उसके (मन) के छिद्रों में वासनाओं के कारण अन्य विचार उठते हैं। इनका नाश क्लेशों के समान कहा है, यानी बीज दग्ध होने से जैसे क्लेश नहीं उठते, वैसे ही वासनाओं का बीज-नाश होने से कर्म-बंधन जाता रहता है।

धर्ममेघ समाधि

तब बड़ी-से-बड़ी इच्छाओं में उदासीनता हो जाती है, और सदैव विवेक होने से धर्ममेघ समाधि होती है, उससे

क्लेश और कर्मों का नाश हो जाता है। इस अवस्था में, सब आवरणों के दूर होने से, अनंत ज्ञान की प्राप्ति होती है, और ज्ञेय वस्तु अल्प हो जाती है, यानी जानने लायक कोई वस्तु नहीं रहती। इससे गुणों का कार्य समाप्त हो जाता है, और परिणाम-क्रम भी बंद हो जाता है। परिणाम के बंद होने पर क्रम, जो क्षणों का प्रतियोगी है, अलग पहचान लिया जाता है।

कैवल्य

पुरुषार्थ-शून्य गुणों का प्रसव बंद होना कैवल्य है। अथवा चित्त-शक्ति का अपने रूप में स्थित होना कैवल्य है।

समाप्त

परिशिष्ट ३

शोधन-विचार

शरीर शुद्धि इन छः कर्मों से होती है—(१) धौति, (२) वस्ति, (३) नेति, (४) लौलिकी, (५) त्राटक और (६) कपालभाति।

धौति चार प्रकार की है, १—अंतर्धौति, २—दंतधौति, ३—हृद्धौति और ४—मूल-शोधन।

अंतर्धौति, जिसका अर्थ अंग के भीतर की शुद्धि करना है, चार प्रकार की है—१ वातसार (वायु त्याग करना), २ वारिसार (जल त्याग करना), ३ वह्निसार और ४ बहिष्कृत।

वातसार—दोनो होंठों को सिकोड़कर यानी कौए की चोंच के समान मुख को करके वायु को पिए, पेट के भीतर चलावे। फिर धीरे-धीरे मुख के रास्ते निकाले। इससे देह के रोग जाते हैं, और उसकी अग्नि बढ़ती है।

वारिसार—मुख से धीरे-धीरे कंठ तक पानी पीकर उसे पेट में चलावे, और फिर गुदा द्वारा निकाल दे। इससे देह निर्मल होती है। वह देव-देह समान हो जाती है।

वहिसार—टुंडी की गाँठ को सौ बार मेरुपृष्ठ में लगावे, यानी पेट को ऐसा पिचकावे कि नाभि घुसकर पीठ की हड्डी में लग जावे। इससे पेट के रोग दूर होते हैं, और जठराग्नि बढ़ती है।

बहिष्कृत—कौए की चोंच के समान मुख बनाकर वायु पान करे, जिससे पेट भर जाय। उसे पेट में १½ घंटे रखने के पीछे गुदा द्वारा निकाल दे।

प्रक्षालन—नाभि को जल में डुबाकर खड़ा हो, और शक्ति नाड़ी यानी त्रिवली को बाहर करके बराबर धोता रहे जब तक उसका मल दूर न हो। मल दूर होने पर उसे फिर पेट में बैठा दे। *इससे देव-तुल्य देह हो जाती है।* बहिष्कृत धौति-प्रयोग के करने के लिये मनुष्य को आध घंटे तक श्वास रोकने की शक्ति होनी चाहिए। जिसमें ऐसी शक्ति नहीं है, उसे अधम होने का भय है।

दंतधौति—यह धौति चार प्रकार की है—

१—दाँतों की जड़ को धोना यानी दंतमूल-धौति।

२—जिह्वा-शोधन, अथवा जिह्वामूल-धौति।

३—कर्णधौति।

४—कपाल-रंध्र-धौति।

दंतमूल धौति—खैर के रस अथवा शुद्ध सूखी मिट्टी से

दाँतों की जड़ को साफ़ करे। जब तक मैल दूर न हो, तब तक कुल्ला करे और फिर साफ़ करे।

जिह्वामूल-धौति—तर्जनी, मध्यमा और अनामिका उँगलियों को गले के भीतर डालकर जीभ को जड़ तक बार-बार घिसे, और धीरे-धीरे कफ के दोष को निकाल दे। मक्खन को जीभ में लगाकर नित्यप्रति दोहे और फिर चिमटी या चिमटे से जीभ का अग्र-भाग पकड़कर खींचे। यह धौति सूर्योदय और सूर्यास्त समय करने की है। इससे जिह्वा लंबी हो जाती है।

कर्णधौति—तर्जनी और अनामिका उँगलियों के योग से कानों के दोनो छेदों को रोज़ साफ़ करे। ऐसा करने से एक प्रकार का नाद प्रकट होगा।

कपाल-रंध्र-शोधन—शिर के बीच के गड्ढे को दाहने हाथ के अँगूठे द्वारा जल से साफ़ करे। इस अभ्यास से भीतरी कफ के दोष नष्ट हो जाते हैं, नाड़ियाँ निर्मल हो जाती हैं, और दृष्टि साफ़ हो जाती है। इसके करने का समय है सूर्यास्त या भोजन या निद्रा का अंत, यानी भोजन करने के पीछे या सो के उठे तब। इसे रोज करना चाहिए।

हृद्धौति तीन प्रकार की है—दंडधौति, वमनधौति और वासधौति।

केले के दंड तथा हलदी के दंड अथवा चिकने बेत के दंड को हृदय के बीच धीरे-धीरे प्रवेश करके धीरे-धीरे निकाले। यह हृद्धौति है।

दंडधौति—इस धौति से कफ और पित्त तथा क्लेद यानी उकलाहट आदि विकार के मल मुख द्वारा हृदय से बाहर निकाल दिए जाते हैं। इससे हृदय के समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

वमनधौति—भोजन के अंत में कंठ तक जल पीकर थोड़ी देर तक ऊपर को देखे, और उस जल को वमन कर दे। प्रति दिन अभ्यास करने से इसके द्वारा कफ और पित्त के दोष दूर हो जाते हैं।

वासधौति—चार अंगुल चौड़ा और कम-से-कम पाँच हाथ लंबा महीन कपड़ा लेकर धीरे-धीरे निगल जाय, और फिर उसे धीरे-धीरे बाहर निकाले। इसके अभ्यास से गुल्मरोग, ज्वररोग, प्लीहारोग, कुष्ठरोग तथा कफ और पित्त के रोग दूर होते हैं, और आरोग्य और बल-पुष्टि होती है।

मूल-शोधन—जब तक मूल-शोधन नहीं होता, तब तक अपान-वायु का कड़ापन बना रहता है, यानी गुदा का वायु कष्ट से निकलता है। कच्ची हलदी की जड़ अथवा मध्यमा उँगली से गुदा का द्वार जल से बार-बार साफ़ करना चाहिए।

इससे पेट के भीतर का कड़ापन तथा आम की अजीर्णता दूर हो जाती है, और कांति और पुष्टता आती है, जठराग्नि बढ़ जाती है।

वस्ति

वस्ति दो प्रकार की है—जलवस्ति और शुष्कवस्ति

जलवस्ति—ठंडे उथान जल में उत्कट आसन से बैठकर गुदा देश को सिकोड़े और फैलावे। इससे प्रमेह-रोग, उदावर्तरोग और क्रूरवायु रोग दूर होते हैं, देह अपने वश में हो जाती है, मनुष्य कामदेव के समान रूपवान् हो जाता है।

स्थलवस्ति अथवा शुष्कवस्ति—पृथिवी पर पीठ की ओर उत्तान होकर पड़े और क्रमशः गुदा द्वार को चलावे। अश्विनी मुद्रा द्वारा गुदा को सिकोड़े और फैलावे। इससे वातपित्तादि कोष्ठ-दोष जाते रहते हैं, उदर की जठराग्नि बढ़ जाती है, आमवात रोग भी जाता रहता है।

नेतिकर्म

बित्ते-भर का महीन डोरा नाक के छेदों में डाले, और उसे मुख के द्वारा निकाले। इसके द्वारा कफ-दोष जाते रहते हैं, दिव्य दृष्टि हो जाती है यानी मनुष्य छोटी-से-छटी चीज़ को भी देख सकता है, और खेचरी-सिद्धि यानी आकाश में जाने की सिद्धि हो जाती है।

नौलिकी विधि

प्रबल वेग से पेट को दोनो बग़ल घुमावे। इसे नौलिकी योग कहते हैं। यह सब भाँति के रोगों को दूर करती है, और देहस्थ अग्नि को बढ़ाती है।

त्राटक

पलक का ढकन बंद करके किसी छोटी चीज़ की ओर, जब तक आँसू न गिरें, इकटक देखता रहे। इससे नेत्र के सब रोग दूर हो जाते हैं, महीन दृष्टि हो जाती है, और इससे शांभवी मुद्रा भी सिद्ध हो जाती है।

कपाल भाति

यह तीन प्रकार की है—वातक्रम, व्युत्क्रम और शीत्क्रम। इसके करने से कफ के सब रोग दूर हो जाते हैं।

वातक्रम—इडा यानी नाक के बाएँ छेद के द्वारा पवन को खींचकर भरे, और पिंगला यानी दाहने नाक के छेद से निकाल दे। इसी प्रकार दाहने नाक के छेद से पवन भरकर बाँए छेद से निकाल दे। यह वातक्रम कपाल-भाति है।

व्युत्क्रम—दोनो नाक के छेदों से जल को भरकर मुख की राह से निकाले, और मुख की राह से जल पीकर नाक द्वारा निकाले। इससे कफ के सब दोष दूर होते हैं।

शीत्क्रम—मुख से शीत्कार कर यानी सुर-सुर कर जल

पीना और उसे नाक के छेदों द्वारा गिराना। इस विधि से मनुष्य कामदेव के समान कांतिवाला हो जाता है। बुढ़ापे की निर्बलता नहीं आती है, शरीर अपने क़ाबू में रहता है, और कफ के सब दोष जाते रहते हैं।

ये शरीर की भीतरी, बाहरी शुद्धियाँ हैं। प्राचीन काल में, जब भारतवासी इन्हें करते थे, तो अनेक प्रकार रोगों से बचे रहते थे, और हकीम-डॉक्टरों के शिकार नहीं बनते थे। इन शुद्धियों में से कुछ का अभ्यास हमारे विद्यार्थियों को ज़रूर करना चाहिए। पर करावे कौन?

हमारी पाठशालाएँ और विद्यालय तो अँगरेज़ी ढंग पर चल रहे हैं। उनमें देशी बातों की पहुँच कहाँ!

उक्त साधनों में से प्रक्षालन और जलबस्ति-क्रियाओं की कुछ-कुछ नक़ल ल्यूकोनी सिस्टम में है, जिसे हमारे अँगरेज़ी पढ़े बाबू लोग बड़ी श्रद्धा से देखते, और प्रशंसा करते हैं। यदि ल्यूकोनी को शौच की सब क्रियाएँ मालूम होतीं, और वह इन्हें अपने ढंग से लिखकर प्रचारित करता, तो सभ्य संसार उसका प्रशंसा-गान करने लगता, और हमारे नक़ाली भारतवासी तो इन्हें पढ़कर अपने को कृतार्थ समझते।

जो योगी इन क्रियाओं को करते हैं, वे कभी रोगी नहीं होते। उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट होते हैं, और उनकी आयु भी

लंबी होती है। योग-साधनों में से शौच एक प्रारंभिक क्रिया है। आगे के साधन, जिनका उल्लेख पुस्तक में किया है, इससे भी सौगुने उपयोगी और लाभदायक हैं।

इन शौच-क्रियाओं को पढ़ने और याद रखने की सुविधा के लिये एक नक़शा देते हैं—

कपालभाति
व्युत्क्रम
शीत्क्रम
अंतर्धौति
वातसार
वासधौति
दंतमूल धौति
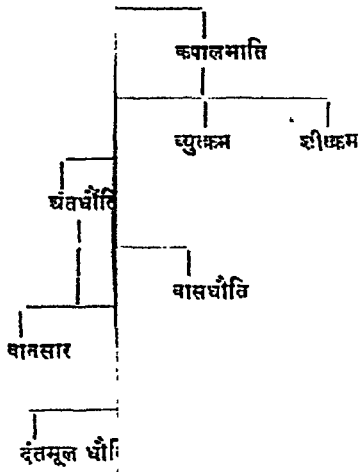
परिशिष्ट ४

आसन और मुद्राएँ

यों तो चौरासी लाख योनियों के हिसाब से चौरासी लाख आसन हैं, पर मुख्य आसन चौरासी ही गिने जाते हैं। इनमें भी ३२ आसन प्रधान हैं, जिनका वर्णन घेरंड-संहिता में दिया है। पातंजल योगसूत्रों के भाष्यकार श्रीवेद-व्यासजी ने योग-सूत्रों के दूसरे पाद के ४६वें सूत्र पर भाष्य में ११ आसनों का नाम लिखा है। पहले हम इन्हीं का कुछ वर्णन देते हैं।

पद्मासन—इस आसन में दाहने चरण को बाईं जाँघ पर और बाएँ चरण को दाहनी जाँघ पर रक्खा जाना है, और पीछे की ओर से दाहने हाथ से दाहने चरण के अँगूठे को और बाएँ हाथ से बाएँ चरण के अँगूठे को मजबूती से पकड़ा जाता है। ठोड़ी छाती पर धरकर नाक के अग्र-भाग पर ध्यान लगाया जाता है। इस आसन से रोग दूर हो जाते हैं।

वीरासन—एक जाँघ के ऊपर एक चरण धर के दूसरा चरण पीछे की ओर धरे।

भद्रासन—दोनो एँड़ियाँ अंडकोश के नीचे उलट के धरे और फिर पीठ की ओर से दोनो हाथों से दोनो पैरों के अँगूठे पकड़े, और नाक के अग्र-भाग को देखे। इस आसन से अनेक रोग जाते रहते हैं।

स्वस्तिकासन—दोनो पिंडलियाँ दोनो जाँघों के बीच में करके दोनो पैरों के तलवे भी उसके मध्य में धरे, और सरल शरीर कर बैठे।

दंडासन—दोनो जाँघें, घुटने तथा पैरों को सीधा पसारकर बैठे। दोनो टखने मिल जायँ, पर पैर के अँगूठे अलग रहें।

सोपाश्रय—इस आसन में बाघंबर अथवा मृगछाला या कोई कपड़ा बिछाकर बैठा जाता है।

पर्यंकासन—इसमें घुटने फैला दिए जाते हैं और बाहुओं पर लेटा जाता है।

क्रौंचनिषद, हस्तिनिषद, उष्ट्रनिषद — क्रौंच, हाथी और ऊँट के बैठने की नक़ल करके आसन लगाना।

समसंस्थान—इसमें पैर इस तरह रक्खे जाते हैं कि दोनो पैरों के अग्र-भाग और एँड़ियाँ आपस में मिल जाते हैं, और पैर थोड़े झुके रहते हैं।

स्थिर सुखासन—वही आसन है, जिसमें बैठने में दृढ़ता

और आराम पहुँचे। इसी को यथासुखासन भी कहते हैं, यानी कोई आसन, जिसमें आराम पहुँचे।

इन आसनों के सिवा नीचे-लिखे आसन भी उल्लेखनीय हैं—सिद्धासन पैर की एक एँड़ी को योनिस्थान पर रक्खे और दूसरी को उपस्थ के ऊपर। ठोढ़ी को छाती पर रखकर भौंहों के बीच के स्थान को देखे। यह आसन बड़ा उपयोगी है।

मुक्तासन—बाईं एँड़ी योनिस्थल में लगावे, और उसके ऊपर दाहनी एँड़ी रक्खे। शिर और कंठ को एक-सा रक्खे, और निश्चल हो जाय।

वज्रासन—दोनो जाँघों को वज्र के समान करके दोनो पैरों को गुदा के दोनो तरफ़ रक्खे।

सिंहासन—दोनो एँड़ी अंडकोश के नीचे उलटकर आपस में मिलाके धरे। और ऊपर की ओर बाहर कर ले। दोनो पिंडलियाँ पृथिवी में लगा दे, और पिंडलियों के ऊपर मुख को खोलकर नाक के अग्रभाग को देखे।

गोमुखासन—दोनो पैरों को भूमि में जमाकर पीठ की बग़लों में निकाल और शरीर को स्थिर करके बैठे। यह गोमुख के आकार का आसन है।

धनुरासन

दोनो पैर धरती में लकड़ी के समान फैला दे, और दोनो

हाथ पीठ की ओर से लाकर दोनो पैरों को पकड़े। देह को धनुष के आकार की करके उलटे-पलटे। यही धनुरासन है।

मृतासन

मरे हुए मनुष्य की तरह भूमि में शयन करने से मृतासन या शवासन होता है। इससे श्रम दूर होता है, और चित्त को विश्राम होता है।

गुप्तासन

दोनो पैरों को दोनों घुटनों के बीच में छिपावे, और दोनो पैरों पर गुदा को धरे। यह गुप्तासन है।

मत्स्यासन

मुक्त पद्मासन लगाकर हाथ से दोनो घुटनों के शिर को लपेटे, और चित होकर सोवे।

पश्चिमोत्तानासन

दोनो पैर धरती में लकड़ी की तरह फैलाकर हाथों से पकड़े, और दोनो जाँघों के बीच में अपना शिर रक्खे।

मत्स्येंद्रासन

पेट को पीठ की तरह करे यानी पेट को और बाएँ पैर को नवाकर दाहने पैर की जाँघ पर धरे। इसी प्रकार बाएँ पैर पर दाहने पैर की एँड़ी धरे। दाहने हाथ पर मुख को धरे, और भौंहों के बीच में दृष्टि रक्खे।

गोरक्षासन

दोनो जांघों और दोनो पिंडलियों के बीच में दोनो पैर उत्तान कर रक्खे। फिर दोनो हाथों से दोनो एँड़ियाँ पकड़े। फिर कंठ को सिकोड़कर नाक के अग्र-भाग को देखे।

उत्कटासन

दोनो अँगूठों के बल से दोनो पैरों को भूमि पर जमाकर दोनो एँड़ियों को उठा दे, और इन एँड़ियों पर गुदा को धरे। यह उत्कटासन है।

संकटासन

बाएँ पैर और अँगूठे को भूमि में रखकर दाहने पैर से बायाँ पैर लपेटे, और फिर दोनो जाँघों पर दोनो हाथ धरे।

मयूरासन

हाथ के दोनो तलों से भूमि को पकड़े। फिर हाथ की दोनो गाँठों को नाभि के दोनों बग़लों में धरे, और दोनो पैरों को फैलाकर ऊँचे आसन से लकड़ी की तरह आकाश में देह को उठावे। यह मयूरासन है।

कुक्कुटासन

पद्मासन बैठकर दोनो जाँघों और पिंडुलियों के बीच में हाथ को दोनो हाथों की कुहनी पर मंच (शय्या) की तरह उठ के बैठे।

कूर्मासन

दोनो एँड़ियों को अंडकोश के नीचे उलटकर धरे, और शिर, ग्रीवा और शरीर को सीधे धरकर रक्खे।

उत्तान कूर्मासन

पहले कुक्कुटासन बाँधकर फिर दोनो हाथों से कंधा पकड़े, और कछुए की तरह उत्तान हो जाय।

मंडूकासन

दोनो पैर पीठ की ओर करके उनके दोनो अँगूठा परस्पर मिलावे, और दोनों जाँघे सामने की ओर धरे।

उत्तान मंडूकासन

मंडूकासन लगा कर हाथ के टखनों से माथा पकड़ कर उत्तान हो जाय।

वृक्षासन

दहिना पैर बाईं जाँघ की जड़ में धरे, और वृक्ष की तरह खड़ा रहे।

गरुड़ासन

दोनो जाँघों से भूमि को दबावे, और दोनो पिंडलियों पर दोनो हाथ धरे।

वृषासन

गुदा-मूल दक्षिण एँड़ी के ऊपर धरे, उसी के बाएँ

भाग में बाएँ पैर को उलटकर धरे, और पृथिवी को छुए।

शलभासन

नीचे मुख करके सोवे और छाती पर दोनो हाथ धरके दोनो कर-तलों से मिट्टी पकड़कर दोनो पैर शून्य में बिलस्त भर ऊँचे रक्खे।

मकरासन

पृथिवी पर पेट धरके सो जाय, और नीचे मुख करके, छाती को जमीन में लगाकर दोनो पैर फैला दे। फिर दोनो हाथों से माथा पकड़े।

भुजंगासन

पैर के अँगूठे से लेकर नाभि तक देह को नीची करे, बायाँ भाग पृथिवी में अच्छी तरह रक्खे और सर्प के फण की तरह शिर उठावे।

योगासन

दोनो पैरों को चित्तकर जाँघों पर रक्खे, और दोनो हाथ उत्तान-भाव से आसन के ऊपर रक्खे। फिर पूरक से पवन खींचकर कुंभक करे, और नाक के अग्र-भाग को देखे। यह योगासन है।

मुद्राएँ

शरीर के ऊपर के अंगों के प्रयोग को मुद्रा कहते हैं।

मुद्राओं के नाम ये हैं—

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालंधर, मूलबंध, महाबंध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरी, योनि, वज्राणी, शक्तिधारिणी, ताडागी, मांडवी, शांमवी, पंचधारिणी (यह पाँच प्रकार की है, यानी पार्थिवी धारणा, आंभसी धारणा, वैश्वानरी धारणा, वायवी धारणा, और नभो धारणा), अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजंगिनी। भूचरी, चाँचरी, अगोचरी और उन्मनी मुद्राएँ भी हैं।

महामुद्रा

गुदामूल को बाईं एँड़ी से जोर से दबावे, और दाहने पैर को फैलाकर हाथ में पैर की उँगली धरे। फिर कंठ को सिकोड़ के भौंहों के मध्य में ध्यान लगावे। यह महामुद्रा है। इसके अभ्यास से क्षय-रोग, ताप-तिल्ली और जीर्ण-ज्वर रोग दूर हो जाते हैं।

नभोमुद्रा

ऊपर की ओर जीभ करके कुंभक प्राणायाम द्वारा स्थिर हो। इसके अभ्यास से भी मनुष्य नीरोग होता है।

उड्डीयान बंध

उदर के मध्यम-भागस्थ गुह्यादि चक्रस्थित नाड़ी-समूह को नाभि के ऊपर सिकोड़कर उठाना चाहिए। इस बंध से मृत्यु भी डरती है।

जालंधर बंध

कंठ को सिकोड़कर ठोढ़ी को छाती पर धरे। इसके सेवन से सिद्ध होती है।

मूल बंध

बाएँ पैर की एँड़ी से गुदा-प्रदेश को सिकोड़े। फिर नाभि-ग्रंथि को मेरुदंड यानी पीठ की हड्डी से दबावे, और उपस्थ को दाहनी एँड़ी से मज़बूत दबावे। यह मुद्रा वृद्धावस्था को दूर करती है।

महा बंध

महाबंध सब मुद्राओं में उत्तम है। इससे बुढ़ापा और मरण-भय दूर होता है।

महावेध मुद्रा

पहले महाबंध मुद्रा करे, फिर उड्डीयान बंध करे, और फिर कुंभक प्राणायाम से वायु निरोध करे। यह महावेध मुद्रा है। इसके सेवन से योगी के पास न बुढ़ापा आता है, न मौत।

खेचरी मुद्रा

जीभ के नीचे जीभ को जोड़नेवाली नाड़ी को काट दे। जिह्वा के अग्र-भाग और जिह्वा के नीचे को रोज़ चलावे। जीभ को मक्खन से दोहे, और चिमटे से खींचे। रोज़ करने से जीभ लंबी हो जाती है। जीभ इतनी लंबी हो जाय कि

बाहर दोनो भौंहों के बीच लग जाय। फिर जीभ को क्रम से तालू के बीच लगावे, और तालू के गढ़े में ऊपर की ओर उलटकर प्रवेशित करे, और दोनो भौंहों के बीच दृष्टि लगावे। इसके सेवन से मूर्च्छा, भूख, प्यास और आलस्य नहीं होते, और न उसे किसी रोग या जरा-मरण का भय रहता है। न उसे अग्नि जला सकेगी, न पानी गला सकेगा, न पवन सुखा सकेगी और न सर्प काट सकेगा।

विपरीतकरी मुद्रा

भूमि में माथे को धरे, और दोनो हाथों से पृथिवी पकड़कर पैरों को ऊपर की ओर उठा दे। शिर के बल खड़ा रहे। पूरक से पवन खींचकर कुंभक द्वारा जहाँ तक हो सके, ठंहावे। इस मुद्रा के अभ्यास से जरा-मरण का डर जाता रहता है।

वज्रोणि मुद्रा

दोनो हाथों के बल औंधा ऊँचा खड़ा हो जाय। भूमि में माथा भी न टेके। इसके अभ्यास से अंग में शक्ति आती और दीर्घायु होती है।

शक्तिचालनी मुद्रा

एक बिलस्त लंबे और चार अंगुल चौड़े नरम और महीन सफ़ेद कपड़े से नाभि लपेटे। फिर उस वस्त्र को कमर से बाँधे। सिद्धासन बैठकर नाक के दोनो छेदों से प्राण-वायु को

खींचे, और अपान-वायु में मिलावे। जबतक वायु सुषुम्णा नाड़ी के भीतर जाकर प्रकाशित न हो, तब तक आश्विनी मुद्रा द्वारा गुह्य-प्रदेश को धीरे-धीरे सिकोड़े। इसी भाँति श्वास रोक-कर कुंभक-प्राणायाम करे, तो भुजंगिनी ऊपर की ओर उठती है यानी सहस्रदल-कमल परमात्मा में मिल जाती है। इस मुद्रा से जरा, मरण, रोग जाते रहते हैं, और विग्रह सिद्धि हो जाती है, यानी जिस काम को करे, वह शीघ्र ही पूरा हो जाता है।

तडागी मुद्रा

उत्तान होकर पड़े और पेट को तलाव की तरह गहरा-कर कुंभक प्राणायाम करे।

मांडूकी मुद्रा

मुख बंद करके जिह्वा को तालु के ऊपर की ओर चलावे और सहस्र-दल से जो अमृत गिरता है, उसका धीरे-धीरे पान करे। इस मुद्रा से सफ़ेद बाल नहीं होते, यौवन सदा बना रहता है, और दीर्घायु होती है।

शांभवी मुद्रा

दोनो भौंहों के बीच में दृष्टि बाँधकर देखने का अभ्यास करे, और मन को स्थिर करके वहीं परमात्मा को देखे। इस मुद्रा की बड़ी प्रशंसा है।

अश्विनी मुद्रा

गुदा के मुख को बार-बार सिकोड़ना और फैलाना अश्विनी मुद्रा है। इससे शक्ति बढ़ती है और गुदा के सब रोग जाते रहते हैं।

पाशिनी मुद्रा

दोनो पैर कंठ की पीठ में डालकर पाश समान बंधन करे। जैसे गले में पाश डाली जाती है, वैसे दोनो पैरों से कंठ में पाश डाले। इससे बल बढ़ता है।

काकी मुद्रा

कौए की चोंच के समान मुख बनाकर धीरे-धीरे पवन पिए। इससे मनुष्य नीरोग होता है।

मातंगिनी मुद्रा

कंठ तक जल में खड़ा होकर नाक से जल खींचकर मुख से निकाले। फिर मुख से जल खींचकर नाक से निकाले। ऐसा बार-बार करे। यह मुद्रा जरा-मरण को रोकती है और मनुष्य को हाथी-समान बलवान् कर देती है।

भुजंगिनी मुद्रा

मुख को थोड़ा फैलाकर गले से वायु पिए, जिससे गले में वायु का धक्का जोर से लगे। यह सब उदर के रोगों को दूर करती है। इसके सेवन से अजीर्ण रोग कदापि नहीं रहता।

योनि-मुद्रा

पहले सिद्धासन से बैठे, फिर कान, आँख, नाक, मुख को अँगूठा, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका उँगलियों से बंद करे। फिर प्राणवायु को खींचे और उसे अपानवायु से मिला दे। फिर छहों चक्रों का ध्यान करे, और 'हूँ' और 'हंस' इन दो मंत्रों से भुजंगिनी-रूप कुंडलिनी को जगावे और सहस्र-दल-कमल पर उठाकर ले जाय। फिर शिव और शक्ति का ध्यान करे। इस मुद्रा के द्वारा समाधि शीघ्र ही सिद्ध होती है। इस से महापातकी भी अपने पातक से मुक्त हो जाता है।

पंचधारणा मुद्रा

इन मुद्राओं के सेवन से मनुष्य जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है। आकाश में भी उड़ सकता है। ये पाँच मुद्राएँ ये हैं—

१ पार्थिवी धारणा मुद्रा—

पृथिवी-तत्त्व का रंग पीला है। उसका बीज लकार है। उसका आकार चौकोन बराबर है। उसके देवता ब्रह्मा हैं। इन सबका ध्यान हृदय में करे। प्राणवायु को खींचकर कुंभक द्वारा पाँच घड़ी धारणा करता रहे। मन डिगने न पावे। इसका दूसरा नाम अधोधारणा भी है। इसके सेवन से पृथिवी-संबंधी सब बाधाएँ जाती रहती हैं।

२ आंभसी धारणा मुद्रा—

जल-तत्त्व का रंग चंद्र-तुल्य विमल और कुंद-पुष्प-तुल्य उज्ज्वल है। इसकी अमृत संज्ञा है, और वकार बीज है। विष्णु देवता हैं। इन सबका हृदय में ध्यान करे। प्राण-वायु को खींचकर पाँच घड़ी कुंभक द्वारा स्थिर चित्त रहे। इस मुद्रा का सेवनेवाला महाभयानक और गंभीर जल में भी पड़कर नहीं मरता है। श्वास-साधन से जल में डूब भी नहीं सकता।

३ आग्नेयी मुद्रा—

अग्नि-तत्त्व का स्थान नाभिस्थल है। रंग बीरबहूटी की तरह लाल है। रकार बीज है। आकार त्रिकोण है, और रुद्र इसके देवता हैं। पाँच घड़ी तक कुंभक प्राणायाम द्वारा प्राण-वायु को धारण करे। इससे भय दूर हो जाता है, और साधक की मृत्यु अग्नि द्वारा कभी नहीं होती। यदि धधकती हुई अग्नि में भी गिर पड़े, तो वह मरेगा नहीं।

४ वायवी धारणा मुद्रा—

वायु-तत्त्व का रंग धुएँ की तरह है। इसका बीज यकार है। देवता ईश्वर हैं। यह तत्त्व सत्त्व-गुण-मय है। कुंभक द्वारा पाँच घड़ी प्राण-वायु को रोके रहे। इसके साधन से वायु द्वारा मृत्यु नहीं होती और आकाश में जाने-आने की शक्ति हो जाती है। यह जरा-मरण को दूर करती है।

५ आकाशी धारणा मुद्रा—

आकाश-तत्त्व का रंग समुद्र के साफ़ पानी की तरह चम-कीला होता है। सदाशिव इसके देवता हैं। हकार बीज है। कुंभक द्वारा प्राणवायु को पाँच घड़ी तक रोके, और इसका ध्यान करे। इसके करनेवाले को मरण-भय नहीं होता।

मुद्राओं का साधन करने से सब रोग दूर हो जाते हैं, जठराग्नि बढ़ जाती है। जरा-मरण का भय जाता रहता है। उसे आग, पानी, पवन आदि से दुःख कभी नहीं होता। कास, श्वास, प्लीह, कोढ़ और बीस तरह के कफ-रोग दूर हो जाते हैं। मुद्राओं को जहाँ तक बने गुप्त रक्खे, और केवल अधिकारी पुरुषों को बतावे।

नोट—भूचरी, चाँचरी, अगोचरी और उन्मनी मुद्राएँ भी वर्णन करने योग्य हैं।

भूचरी मुद्रा

इस मुद्रा का वास नासिका है। गुदाधार बंध को पैर और एँड़ी लगाकर करके सिद्धासन पर बैठे, और अपान-वायु को ऊपर की ओर खींचे, जब तक वह प्राण-वायु में न मिल जाय।

चाँचरी मुद्रा

इसका वास नेत्रों में है। नाक के चार अंगुल आगे स्थिर चित्त कर देखता रहे। फिर नाक पर टकटकी लगावे, और

ध्यान करे। तब उसे सामने चमकता हुआ सूर्य-सा दिखाई देता है।

अगोचरी मुद्रा

इसका वास कान में है। ज्ञान और सुरत दोनो एक हैं, देख नहीं पड़ते। मन को स्थिर कर अनहद शब्द सुने।

उन्मनी मुद्रा

इसका वास दसवें द्वार पर है। यहाँ सिद्ध समाधि एक हो जाते हैं। यहाँ आनंद-ही-आनंद है। यहाँ काल और क्लेश कुछ नहीं है। यहाँ तीनो गुण नहीं रहते, और न माया का लेश-मात्र है। यहाँ जीवात्मा परमात्मा हो जाता है, और ध्याता, ध्येय और ध्यान एक हो जाते हैं।

परिशिष्ट ५

नाडीचक्र, प्राणायाम और स्वरोदय

नाडी-चक्र

शरीर के भीतर नाड़ियों के चक्र हैं, जो प्राणायाम करने में बड़े उपयोगी हैं। चक्र छः हैं, जो कमल के रूप के हैं, और जिनके नाम ये हैं—

१—आधार, २—स्वाधिष्ठान, ३—मणिपूरक, ४—अनहद, ५—विशुद्ध, ६—अज्ञा।

आधार-चक्र

यह चक्र गुदा पर है, और सब शरीर का आधार है। यह लाल रंग के कमल के रूप का है। इसमें चार पंखड़ियाँ हैं, जिनपर चार अक्षर लिखे हैं। इस पर श्री गणेश का निवास है। सुरत पवन की पहुँच यहीं तक है। चार अक्षर ये हैं—व, श, ष, स।

स्वाधिष्ठान चक्र

इस चक्र का स्थान लिंग है। रंग पीला है। पंखड़ियाँ छः हैं। इन पर छः अक्षर हैं, और इसके देवता ब्रह्मा हैं, जिनके

साथ सावित्री हैं, और इंद्र-सहित सब देवता। छः अक्षर हैं—
ब, भ, म, य, र, ल।

मणिपूरक चक्र

इसका स्थान नाभि है। नीला वर्ण है। दस पंखड़ियाँ हैं, जिन पर दस अक्षर हैं। इसका देवता विष्णु है, और महालक्ष्मी उनके साथ हैं। इसके दस अक्षर हैं—ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ।

अनहद चक्र

यह चक्र हृदय में है। श्वेत रंग है। १२ पंखड़ियाँ हैं, जिन पर १२ अक्षर हैं। इसका देवता पार्वती-सहित शिव है। १२ अक्षर हैं—क, ख, ग. घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ।

विशुद्ध चक्र

यह चक्र कमल कंठ मे है। १६ दल हैं, उन पर १६ अक्षर हैं। देवता जीव है। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। ये १६ अक्षर इस पर हैं।

आज्ञा चक्र

यह चक्र भौंहों के बीच में है। इसके दो दल हैं, और दो अक्षर ह, स, हैं। देवता ज्योति है।

सातवाँ चक्र कमल

यह शीश के मध्य में है। यह हंस-दल है। इसके देवता

सतगुरु हैं। यह सहस्र-दल-कमल है, जो ब्रह्मारंध्र के बीच है। ये सातों कमल सुषुम्णा नाड़ी में आधार से शीश तक हैं। अपान-वायु के तले ये कमल उलटे रहते हैं। ज्यों-ज्यों अपान-वायु का साधन बढ़ता जाता है, इन कमलों का मुँह ऊपर को—आकाश की ओर—होता जाता है। जब अपान-वायु अनहद्-चक्र के पास आती है, तो दस प्रकार के नाद सुनाई देते हैं। ये नाद क्रमशः ये हैं—१ चिड़िया का चीकला, २ चिनचिन, ३ छोटी घंटी का शब्द, ४ शंखध्वनि, ५ वीणा-शब्द, ६ ताल-शब्द, ७ मुरली-शब्द, ८ पखावज का शब्द, ९ नफ़ीरी की आवाज़, १० सिद्धि गरज का शब्द। पहले ९ शब्दों पर ध्यान न धरना चाहिए। दसवें शब्द पर खूब ध्यान दे। अनहद्-शब्द सुनने से मनुष्य अनहद यानी असीम और जीव से ब्रह्म हो जाता है।

नाड़ियाँ

७२,८६४ नाड़ियाँ हैं, जिनकी जड़ नाभि में है। इनमें दश नाड़ियाँ मुख्य हैं, जिनमें से पाँच बाईं ओर हैं, और पाँच दाहिनी ओर। इनमें भी तीन प्रधान हैं, जिनके नाम हैं—इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा। सुषुम्णा नाड़ी अग्नि-स्वरूप है।

पूर्वोक्त दस नाड़ियों के नाम और स्थान ये हैं—शंखिनी नाड़ी गुदा में, किरकल लिंग में, पोषा दाहने कान में, जसनी

बाँएँ कान में, गंधारी बाँएँ नेत्र में, हस्तिनी दाहने नेत्र में, लंबका जिह्वा में, जो सब स्वादों को चखाती है। नाक के दाहिनो ओर पिंगला, जहाँ सूर्य का वास है। नाक के बाँई ओर इड़ा है, जहाँ चंद्रमा का वास है। इन दोनो के बीच में सुषुम्णा नाड़ी है। इसे ब्रह्म-नाड़ी भी कहते हैं। बाईं ओर वायु खींचना पूरक कहलाता है। उस वायु को भीतर रोकना कुंभक है, और फिर उसे दाहनी ओर निकाल देना रेचक है। इसका नाम प्राणायाम हैं। इड़ा से वायु को पूरक करना चाहिए, कुंभक से वायु को रोक रखना चाहिए और पिंगला से वायु को रेचक यानी खाली कर देना चाहिए। इस क्रिया से प्राणायाम करे, जिससे सब पाप जाते रहते हैं। यदि पूरक १६ मात्रा करे, तो कुंभक ६४ मात्रा करे, और रेचक ३२ मात्रा करे। ओं-बिंदु-सहित को मात्रा कहते हैं। यही प्रणव बीज-मंत्र है। हलके भोजन करने चाहिए, आधी भूख रह जानी चाहिए। प्राण-वायु १२ अंगुल नाक के आगे जाती है। देह में २१,६०,००० श्वास होते हैं।

कुंडलिनी

नाभि के स्थान पर कुंडलाकार से नागिन रहती है। इसी में जीव रहता है। कुंभक करने से वह जाग उठती है, जैसे लाठी लगने से लेटा हुआ शीश उठाता है।

मूलाधार में आत्म-शक्ति सबसे ऊँचा देवता कुंडलिनी सर्प के आकार साढ़े तीन लपेटा की गोला बाँधे सोती है। जब तक वह सोती है, मनुष्य अज्ञान रहता है। इसे जगाने पर ब्रह्म-द्वार माथे का नभेद यानी चैतन्य किया जा सकता है। इसका नाभि में वास है और पद्मपराग मणि का-सा प्रकाश है। इसके सात लपेटे हैं, उससे सहस्र नाड़ियाँ लगी हैं। इनमें इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा मुख्य हैं। इनमें भी सुषुम्णा मुख्य है, जिसे योगी जन कमल-नाल कहते हैं। यह ब्रह्म-रंध्र तक गई है, जहाँ सातवाँ कमल है। यह नागिन बहुत सूक्ष्म है, यानी बाल के हज़ारवें भाग के समान। इसका वर्ण रक्त है, और आकार इसका सर्प का-सा। जब बहुत कुंभक प्राणायाम किया जाय, तो यह ऊपर को जाती है, और ब्रह्म-रंध्र में पहुँचकर दो घड़ी ठहरती है। जो इस व्रत को पूरा कर लेते हैं, वे सिद्ध हो जाते हैं, और आकाश में उड़ सकते हैं। इससे सब शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। काया-पलट भी हो सकता है।

प्राणायाम

स्थान—दूर देश में, जंगल में, राजधानी में, तथा बहुत जनों के पास योगारंभ नहीं करना चाहिए। यदि करेगा, तो सिद्ध न होगा। इनके कारण हैं कि दूर देश में अविश्वास करते हैं,

वन में रक्षा नहीं होती। और राजधानी में सब बातें प्रकट हो जाती हैं।

अच्छे देश में, धार्मिक राजा के राज्य में, ऐसी जगह, जहाँ अभीष्ट भोजन मिले, जहाँ कुछ उपद्रव न हो, एक कुटी बनावे। उसके चारो ओर भीत हो। उसके भीतर कुआँ-तालाब आदि हों। यह कुटी न ऊँची हो, न नीची। वहाँ कोई जानवर न जा सके। उसे गोबर से लीपे। यह जगह गुप्त हो। वहाँ प्राणायाम करे।

काल—हेमंत ऋतु, शिशिर ऋतु, ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु, इनमें योग-साधन करने से रोग उत्पन्न होता है, इसलिये इनमें न करे। इसके करने को ऋतुएँ हैं वसंत और शरद। इनमें करने से योग सिद्ध होता है, और काया नीरोग होती है। माह मास से वैशाख मास तक चार महीने वसंत ऋतु का अनुभव होता है, और भादों से अगहन तक शरद ऋतु का। वैसे तो वसंत के दो ही महीने चैत्र और वैशाख हैं, और शरद के दो महीने हैं क्वाँर और कार्तिक।

आहार—योगी को अल्प आहार करना चाहिए, नहीं तो योग सिद्ध नहीं होता। चावल, जौ की रोटी, गेहूँ की रोटी, धुली मूँग, उर्द या चने की दाल, ये अन्न भोजन करे। शाकों में नीचे लिखे शाक खाय—परवल, कटहर, कंकोल, करेला, अरुई,

ककड़ी, केला, गूलर, चौराई का शाक, आम, केले की कच्ची गहर, केले के गुच्छे के डंठल, केले की जड़, आदि। कोमल शाक, समय पर उत्पन्न होनेवाला शाक, परवल के पत्ते, बथुआ और हिलमोचक—ये पाँच शाक अच्छे हैं। शुद्ध, सुमधुर, चिकना भोजन आधे पेट प्रीति से खाय और अच्छा रस भी पिए। यही मित-आहार है। आधे पेट भोजन करे, तीसरे भाग जल पिए और चौथा भाग पेट पवन के चलने को रहने दे।

नीचे लिखी चीजें न खाय—

कड़ुआ, खट्टा, नोन का, चरपरा, भुने चने आदि, दही, मठा, बुरे शाक, शराब, कटहर, कुलथी, मसूर की दाल, पेठा, घीया, बेर, कैथा, काँटेवाली बेल, ढाक, कदंब के फूल, जँभीरी, लकुच, लहसन, विष, कमरख, प्याज, हींग, सेमर, गोभी, मक्खन, गुड़, शक्कर आदि मॉड़े की चीज, पाँच प्रकार के केले, अनार, सौंफ, मुनक्का, नोनियाँ, आँवले और खट्टे रस।

योगी को नीचे-लिखी चीजें भोजन में लेनी चाहिए—

इलाची, जावित्री, लौंग, बलवर्द्धक ओषधि, जामुन, कठजामुन, हर्रे छुहारे, जल्दी पकनेवाली या मन को प्रिय चिकनी वस्तु अथवा धातुओं को पुष्ट करनेवाली चीजें।

कड़ी चीज अथवा बुरी चीज, सड़ी बासी, बहुत ठंडी, बहुत गरम चीज नहीं खानी चाहिए।

बहुत प्रातःकाल स्नान करना, उपवास करना, काया को क्लेश पहुँचानेवाले काम, एक ही दफ़े खाना या नहीं खाना या याम के अंत में भोजन करना, यह उसे नहीं करना चाहिए।

इसी तरह प्राणायाम करनेवाले को आहार करना चाहिए। पहले प्राणायाम करे, तब दूध-घी नित्य भोजन में खाय-पिए, और दुपहर और संध्या समय, इन दो ही समय भोजन करे।

नाडी-शुद्धि बीज-मंत्रों तथा धौति-कर्मादि से होती है। इसे पहले कर ले, तब प्राणायाम करे; क्योंकि नाड़ियाँ माला की तरह गुही हैं। इनके भीतर पवन जाकर घूम नहीं सकता।

बीज-मंत्रों द्वारा शुद्धि को समनु कहते हैं, और धौति-कर्म द्वारा को निर्मनु।

कुंभक-प्राणायाम ८ प्रकार का है—

१ सहित, २ सूर्य-भेद, ३ उज्जायी, ४ शीतली, ५ भस्त्रिका, ६ भ्रामरी, ७ मूर्च्छा, ८ केवली।

१ कुंभक प्राणायाम सहित

यह दो प्रकार का है—सगर्भ और निर्गर्भ। जो बीज-मंत्र बोलकर कुंभक किया जाय, वह सगर्भ है, और जिसमें बीज मंत्र न बोला जाय, वह निर्गर्भ है।

सगर्भ—नाक के बाएँ छेद से १६ बार 'अं'-मंत्र जपता हुआ वायु खींचे और ब्रह्मा का ध्यान करे, उसी समय कुंभक के पहले और पूरक के पीछे उड्डीयान करे। फिर विष्णु का ध्यान करे, और ६४ बार उकार का जप करता हुआ वायु को रोके। फिर शिव का ध्यान करे, और ३२ बार मकार का जप करता हुआ वायु को दाहने छेद से निकाले। इसी प्रकार नाक के दाहने छेद से वायु खींचकर बाएँ से निकाले, और इन्हीं बीज-मंत्रों का जप करे।

निर्गर्भ—बिना बीज के कुंभक करना। पूरक, कुंभक और रेचक, ये तीनो प्राणायाम ११२ मात्रा तक हैं।

उत्तम प्राणायाम २० मात्रा का है, मध्यम १६ का और अधम १२ का।

प्राणायाम से देह के सब रोग जाते रहते हैं, बुद्धि बढ़ती है, ज्ञान प्राप्त होता है, मन में आनंद होता है, और सुख की प्राप्ति होती है।

२ सूर्य-भेदक कुंभक

पहले नाक के दाहने छेद से वायु खींचे। जालंधर मुद्रा को करे, और नाक के दोनो छेदों से पवन को तब तक रोके रहे, जब तक नख और बालों में पसीना न आ जाय। यह प्राणायाम कुंडली शक्ति को तेज करता है,

जठराग्नि को बढ़ाता है, और बुढ़ापे और मौत को दूर रखता है।

३ उज्जायी कुंभक

नाक से पवन को खींचकर मुख में धरके रोके, और हृदय और कंठ के वायु को खींचकर मुख के बीच मिलाकर रक्खे। इससे कफ-रोग नहीं होता, वादी का कोप तथा तापतिल्ली रोग नहीं होते।

४ शीतली कुंभक

जिह्वा से वायु खींचकर धीरे-धीरे पेट में भरे, फिर क्षण-भर रोककर नाक से निकाल दे। इससे कफ, पित्त और अजीर्ण-रोग दूर होते हैं।

५ भस्त्रिका कुंभक

लुहार की धौंकनी के समान बार-बार वायु को नाक के दोनो छेदों से खींचकर पेट में भरे। इस तरह बीस बार खींच कर कुंभक करे, फिर वायु को पूर्वोक्त विधि से निकाल दे। यह प्राणायाम तीन दफ़े करना चाहिए। इसके साधन से मनुष्य नीरोग रहता है।

६ भ्रामरी कुंभक

आधी रात बीते एकांत स्थान में मनुष्य दोनो हाथों से कान मूँदकर पूरक और कुंभक-प्राणायाम करे। भीतर के शब्द

दाहने कान से सुने, पहले झिल्ली-नाद सुनाई देगा, फिर वंशी-ध्वनि, फिर मेघ-गर्जन, फिर झाँझ का शब्द, फिर भौंरी शब्द, फिर काँसे के घंटे का घोष, फिर तुरही का शब्द, फिर भेरी मृदंग और नगाड़ों का-सा शब्द सुनाई देगा। ये शब्द अपने आप ही होते हैं और इन्हीं शब्दों से ज्योति उत्पन्न होती है और ज्योति के अंतर्गत मन है। जब मन इसमें मिल जाता है। तो वही विष्णु भगवान् का पद है।

७ मूर्च्छा कुंभक

कुंभक को सुख से करके मन को दृष्टि द्वारा भौंहों के बीच में लगा दे, और सब विषयों को छोड़ दे। मन को मूर्च्छा की तरह करे। मन के योग से आत्मा में अवश्य आनंद होगा।

८ केवली कुंभक

नाक के दोनो छेदों से वायु खींचकर एक खाली कुंभक करे, और पहले दिन जब तक अजपा ६४ बार पूरी न हो जाय, करता रहे। इसे दिन में ८ बार करना चाहिए अथवा ८ पहरों में ८ बार तथा प्रतिदिन पाँच बार अथवा प्रातःकाल, मध्याह्न, संध्या आधी रात्रि के चौथे पहर में करे, अथवा तीनो संध्याओं में करे। जब तक यह प्राणायाम सिद्ध न हो, तब तक अजपा का परिमाण बढ़ाता जाय। अजपा का मतलब है 'हंसः'। जब श्वास वायु भीतर से बाहर आती है, तब

'हं' वर्ण बोला जाता है, और जब बाहर से भीतर जाती है तब 'सः' वर्ण बोला जाता है। इस प्रकार 'हंस'-शब्द दिन-रात में २१,६०० बार बोला जाय, यानी इतने श्वास लिए जाते हैं। 'हं' का अभिप्राय शिव से है, और 'सः' का शक्ति से। यह अजपा आनंद-गायत्री कहलाती है, और इसे सभी जीव जपते हैं। हंसः को उलटा करने से सोऽहं होता है।

प्राणवायु आदि का निर्णय

प्राण-वायु हृदय में रहती है, अपान-वायु गुदा-मंडल में, समान-वायु नाभि-देश में, उदान कंठ के मध्य में और व्यान सब शरीर में व्याप्त है। ये पाँच प्रधान वायु हैं, और पाँच अन्य वायु हैं, जो अप्रधान हैं। वे ये हैं—

५ उपपवन—

नाग—डकार लेने के काम में आता है। यह चैतन्यता ग्रहण करता है।

कूर्म—आँखों की पलकें खोलने-मीचने में। यहीं यह रहता है।

कृकर—छींक लेने में और हिचकी में। यह भूख-प्यास से संबंध रखता है।

देवदत्त—जँभाई लेने में। उबासी लेता है।

धनंजय—मरने के पीछे तक अंग में रहता है। वह सब

जगह है, यह देह से एक क्षण भी बाहर नहीं जाता, और बोलने का काम करता है।

स्वरोदय

मनुष्य के शरीर में इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं। नाक की बाईं तरफ इड़ा है, और दाहनी तरफ पिंगला। इन दोनो के बीच में सुषुम्णा नाड़ी है। इड़ा में चंद्रमा का वास है, और पिंगला मे सूर्य का। स्थिर कार्य की सूचना इड़ा से चलनेवाला स्वर देता है, और चर कार्य की सूचना पिंगला का स्वर देता है। शुक्ल-पक्ष चंद्रमा का है, और कृष्ण-पक्ष सूर्य का। शुक्ल-पक्ष में सोमवार, शुक्रवार और बृहस्पति-वार चंद्र-योग के लिये शुभ हैं, और कृष्ण-पक्ष में मंगल, इतवार और शनिश्चरवार सूर्ययोग के लिये अच्छे। कृष्ण-पक्ष में पहली तीन तिथियों तक सूर्य रहता है। फिर चंद्रमा और फिर सूर्य। इसी तरह शुक्ल-पक्ष में पहली तीन तिथियों तक चंद्रमा रहता है, और फिर सूर्य और फिर चंद्रमा। यानी तीन-तीन तिथियों के हिसाब से प्रत्येक पक्ष में सूर्य और चंद्रमा रहते हैं। शुक्ल-पक्ष की तीन तिथियाँ तो चंद्रमा से शुरू होती हैं, और कृष्ण-पक्ष को सूर्य से। शुक्ल-पक्ष की पड़वा तिथि चंद्रमा के लिये निषिद्ध है, यानी उस दिन चंद्रमा का वास नहीं है। चंद्र-योग में जो कोई बाएँ स्वर के संग सामने

अथवा ऊपर से अथवा बाँईं ओर से प्रश्न करे, तो शुभ है। इसी प्रकार सूर्य-योग में दाहने स्वर के संग पीछे से अथवा नीचे से अथवा दाहनी ओर से प्रश्न करे, तो शुभ है। दाहने स्वर के चलते हुए बाँईं ओर से शुक्ल-पक्ष में और विना वार के प्रश्न पूछे, वो निष्फल है। बाँया स्वर चलते हुए दाहनी ओर बैठकर प्रश्न करे, तो उसका कार्य भी सिद्ध नहीं हो। सूर्यस्वर चलते हुए दाहनी ओर से लग्न, वार और तिथि मिलाकर प्रश्न करे, तो उसका कार्य सफल हो। इसी प्रकार चंद्र-स्वर में बाँईं ओर से तिथि और वार मिला के प्रश्न पूछे, तो ठीक हो।

७, ५, ९, ३, १५, २५, ये अक्षर सूर्य-योग में फल देनेवाले हैं। ४, ८, १२, १४, १६, ये अक्षर चंद्र-योग में शुभ हैं। कर्क, मेष, तुला और मकर, ये चार राशियाँ चर कार्य के लिये सूर्य-योग में दाहने स्वर के साथ ठीक है। मीन, मिथुन, कन्या और धन, ये चार राशियाँ दोनो यानी सूर्य, चंद्र स्वभाववाली सुषुम्णा स्वर के लिये शुभ हैं। वृश्चिक, सिंह, वृष और कुंभ, ये चार राशियाँ बाँएँ स्वर के साथ चंद्र-योग में स्थिर कार्य के लिये फलदायक हैं।

स्वर देखने का तरीक़ा यह है कि अपना चित्त स्थिर करके नेत्रों को नाक के सामने लगावे, और दृष्टि से निकलते हुए श्वास को देखे। स्वर के बीच में पाँचों तत्त्वों का चलना भी

पहचाने। पाँच तत्त्व हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी। पृथिवी का रंग पीला है, इसलिये पृथिवी-तत्त्व का श्वास पीले रंग का है। १२ अंगुल श्वास का प्रमाण है। जल का रंग श्वेत है। १६ अंगुल श्वास का प्रमाण, और नीचे की ओर जाता है। अग्नि का रंग लाल है, ४ अंगुल श्वास का प्रमाण है, और ऊपर को जाता है। वायु का रंग हरा है, ८ अंगुल श्वास का प्रमाण है, और तिरछी ओर चलता है। आकाश का रंग श्याम है, इसमें दोनो स्वर पूरे चलते हैं, और बाहर नहीं दिखाई देते। इन पाँचों तत्त्वों के स्वाद ये हैं—पृथिवी का स्वाद मीठा, जल का खारी, अग्नि का चर्परा (यानी गरम), वायु का खट्टा और आकाश का कोई स्वाद नहीं है।

चंद्र-स्वर चलता हो, और जल पृथ्वी स्वरों का योग हो, ऐसे में प्रश्न करनेवाले का कार्य हो जाता है।

अग्नि, आकाश और वायु के मिले स्वरों में कोई प्रश्न करे, तो शुभ कार्य नहीं हो।

जल और पृथ्वी श्वास स्थिर कार्य के लिये हैं, और अग्नि और वायु दाहने स्वर में चर कार्य की सिद्धि बताते हैं। चंद्र-स्वर में जब पृथ्वी श्वास वाएँ हो, इस प्रकार रोगी पूछे, तो उसकी मृत्यु नहीं हो। और, यदि सूर्य-स्वर हो, चंद्र-स्वर

बंद हो, और रोगी बाँएँ से प्रश्न करे, तो उसकी मृत्यु अवश्य हो। इसी प्रकार स्वरों के चलने के विचार से वर्ष का फल कहा जाता है कि वर्षा कैसी होगी, धन-धान्य की वृद्धि होगी, या उनका क्षय होगा। प्रजा सुखी रहेगी या दुःखी। इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

ब्याह, दान, तीर्थयात्रा, वस्त्र-भूषण धारण, ये सब बातें बाएँ स्वर में करनी चाहिए। पुस्तक-लेखन, योगाभ्यास, औषध, दीक्षा, नाज बोना, ये भी सब बाएँ स्वर में ही करने चाहिए।

चंद्रयोग में सभी स्थिर होनेवाले कार्य करें। जैसे राज-गद्दी पर बैठना, हवेली बनवाना, बाग़-बग़ीचा, गुफा आदि बनवाना, नई जगह पर नियत होना।

सूर्ययोग और दाहने स्वर के कार्य ये हैं—रण में खड्ग लेकर शत्रु पर प्रहार करना, भोजन करना, स्नान करना, ध्यान, विद्याध्ययन, मंत्र-सिद्धि, ऋण देना इत्यादि।

स्थिर कार्य के लिये चंद्रयोग है और चर कार्य के लिये सूर्ययोग। सुषुम्णा के चलते हुए नहीं चलना चाहिए, नहीं तो विघ्न हो। गाँव को, परगने को, खेत को सुषुम्णा के चलते नहीं चले। सुषुम्णा कभी बाँए चलती है, कभी दाहने। इसमें कार्य करने से या तो ढील हो या जिससे मिलना है,

वह नहीं जिसे या कार्य न हो। अथवा क्लेश हो, पीड़ा हो। ऐसे ही विघ्न हों।

सुषुम्णा के चलते हुए योग या आत्मज्ञान करे। और कोई कार्य करने में हानि होती है। बाएँ स्वर में पूर्व और उत्तर को नहीं चलना चाहिए। चले तो लौटने की आशा नहीं है। दाहने स्वर में दक्षिण-पश्चिम को न जाय। हानि होती है। दाहने स्वर में पूर्व और उत्तर को जाय। इससे कार्य सिद्ध हो। बाएँ स्वर में दक्षिण-पश्चिम जाय। लाभ हो।

जितना बायाँ स्वर चलता है, उतना ही दाहना स्वर चलता है। सुषुम्णा केवल दस श्वास चलती है।

गर्भवती का गर्भ बताना, मृत्यु-योग बताना, मृत्यु जीतने का उपाय, रण में विजय पाने का प्रश्न, ये सब बातें दाहने-बाएँ स्वरों के चलने से बताई जा सकती हैं। जैसे बाएँ स्वरों में गर्भवती प्रश्न करे, तो उत्तर लड़की है; और दाहने में करे, तो लड़का है। स्वरोदय का विषय बड़े महत्त्व का है, और इसका तत्काल ही फल मिलता है। जो विषय को अधिक जानना चाहिए, वे इस विषय के ग्रंथ पढ़ें, और जिन महात्माओं को स्वरोदय का पूर्ण अभ्यास हो, उनसे सीखें। योग के सभी विषय गुरु से सीखने के हैं। इन्हें कोरा पढ़ लेने से काम नहीं चलता।

परिशिष्ट ६

भुवन-ज्ञान

(विभूतिपाद के २५ वें सूत्र को देखो)

सात लोक—अवीचि से लगाकर मेरु की पीठ तक भूः लोक है। मेरु की पीठ से लगाकर ध्रुव लोक तक अंतरिक्ष लोक है, जिसमें नाना प्रकार के ग्रह, नक्षत्र, तारे हैं। इसके ऊपर स्वर्लोक है, जो पाँच प्रकार का है—महेंद्र लोक, महर्लोक, तीन प्रकार का ब्रह्मा का लोक अर्थात् जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। महेंद्रलोक इंद्र का लोक है और महर्लोक प्रजापतियों का लोक।

छः महा नरक—अवीचि तक एक दूसरे के ऊपर छः महा नरक हैं, जो पृथिवी, जल-वायु, अग्नि, आकाश और अंधकार में स्थित हैं। इनके नाम हैं—महाकाल, अंबरीप, रौरव, महारौरव, कालसूत्र और अंध-तामिस्र। इन नरकों में वे प्राणी जाते हैं, जो अपने कर्मों की दुःख-वेदना दीर्घ काल तक भोगते हैं।

सप्त पाताल—सुतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल, अतल और पाताल।

आठवीं सप्तद्वीपा पृथिवी है, जिसे वसुमती कहते हैं। इसके बीच में पर्वतों का राजा सुमेरु पर्वत है, जिसके शिखर चाँदी, सोने, मोती, मूँगे और स्फटिक मणियों के हैं। वैदूर्य मणि की चमक से नीले कमल के पत्तों के समान श्याम आकाश का-सा दक्षिण भाग है। पूर्वी भाग सफेद है, पश्चिमी भाग चमकीला है और उत्तरी पीला।

इसके दाहनी ओर जंबू-वृक्ष है, जिससे इसका नाम जंबू-द्वीप हुआ। सूर्य की चाल से यहाँ रात-दिन होते रहते हैं।

इसके उत्तर तीन पर्वत हैं, जिनके शिखर नीले और श्वेत हैं। उनमें प्रत्येक की लंबाई २००० योजन है। इनके भीतर तीन वर्ष हैं, जो ९००० योजन के हैं। इनके नाम हैं रमणक, हिरण्मय और उत्तरकुरु।

इसके दक्षिण में तीन पर्वत हैं, जिनका नाम निषध, हेम-कूट और हेमशृंग है। प्रत्येक २००० योजन लंबा है। इनके बीच में तीन वर्ष हैं, जिनके नाम हैं हरिवर्ष, किंपुरुष और भारत।

सुमेरु के पूर्व की ओर भद्राश्व और माल्यवान् हैं, और पश्चिम की ओर केतुमाल और गंधमादन। बीच में इलावृत-नामक वर्ष है। यह सब एक लाख योजन का विस्तार है, जिसमें ५०,०००—५०,००० योजन सुमेरु के दोनों ओर है।

यह जंबूद्वीप १,००,००० योजन के विस्तार का है। इससे दुगना खारी पानी का समुद्र इसके चारो तरफ़ है। दूसरे सब द्वीप अपने-अपने पहले द्वीप से दुगने-दुगने होते गए हैं। दूसरे द्वीप ये हैं—शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मलि, गोमेध, पुष्कर। सात समुद्र भी हैं। ये समुद्र इन द्वीपों को चारो ओर घेरे हुए हैं, और इनके जल इक्षु-रस, सुरा, घृत, दही, क्षीर और दूध के समान स्वाद में हैं। ये लोकालोक पर्वत तक चले गए हैं। इनका विस्तार ५० करोड़ योजन है।

पातालों, समुद्रों और पर्वतों पर देव-कायवाले रहते हैं, यानी ये स्थान सुर, गंधर्व, किन्नर, किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सरा, ब्रह्मराक्षस, कूष्मांड और विनायक, इनके रहने के हैं।

द्वीपों में पुण्यात्मा पुरुष और देवता रहते हैं। सुमेरु देवतों की उद्यान-भूमि है। मिश्रवन, नंदन, चैत्ररथ और सुमानस देवतों के बग़ीचों के नाम हैं। देवतों की सभा का नाम सुधर्मा है। उनके शहर का नाम सुदर्शन है, उनके महल का नाम वैजयंत है। सुमेरु के ऊपर ध्रुव-लोक है, जिसमें ग्रह, नक्षत्र और तारे अपने-अपने कार्य में वायु के द्वारा ध्रुव के चारो ओर नियमित हैं।

महेंद्र लोक में छः प्रकार के देवता रहते हैं—त्रिदश, अग्नि

ध्वाता, अर्यमा, तुषित, अपरिनिर्मितवशवर्तिन् और परि-निर्मितवशवर्तिन्। ये जो चाहते हैं, वही प्राप्त हो जाता है। इन्हें अणिमा, लघिमादि सिद्धियाँ सिद्ध हैं। उनकी आयु कल्पों के परिमाण को होती है। वे बड़े सुंदर-रूप हैं, काम-भोगी हैं। उनका जन्म माता-पिता के विना ही हो जाता है, यानी अपने पुण्य कर्मों की प्रेरणा से ही। उनके पास बड़ी अच्छी और अनुकूल अप्सराएँ रहती हैं।

महर्लोक में पाँच प्रकार के देवता हैं—कुमुदा, ऋभव, प्रतर्दन, अजनाभा और प्रचित्ताभा। इनके वश में महाभूत हैं, इनका आहार ध्यान है, इनकी आयु हजार कल्पों की होती है।

ब्रह्मा के पहले लोक यानी जनलोक में चार प्रकार के देवता रहते हैं—ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अजरामर। उनके वश में भूत यानी पंचतत्त्व और सब इंद्रियाँ हैं। उनकी आयु एक दूसरे से दुगनी है। यानी जितनी आयु ब्रह्मपुरोहितों की है, उससे दूनी ब्रह्मकायिकों की और उनसे दूनी ब्रह्ममहाकायिकों की और उनसे दूनी अमरों की।

ब्रह्मा के दूसरे लोक में यानी तपलोक में तीन प्रकार के देवता हैं—आभास्वरा महाभास्वरा और सत्यमहाभास्वरा।

उनके वश में भूत, इंद्रियाँ और प्रकृति है। पहलों से दूसरों की उमर दूनी है, और दूसरों से तीसरों की। इन सबका आहार ध्यान है, ये ऊर्ध्वरेता हैं और इनका ज्ञान अकुंठित है। नीचे के लोकों में कोई ऐसा विषय नहीं, जो वे नहीं जानते। इनकी आयु हजार कल्प की होती है।

ब्रह्मा के तीसरे लोक में यानी सत्यलोक में चार प्रकार के देवता रहते हैं—अच्युत, शुद्धनिवास, सत्यभा और संज्ञा-संज्ञिन्। वे रहने को गृह नहीं बनाते, वे अपने में ही रहते हैं, यानी स्वप्रतिष्ठ हैं, और एक दूसरे के ऊपर रहते हैं। उनके वश में प्रधान यानी मूल-प्रकृति है। उनकी आयु सर्ग पर्यंत तक की होती है। इनमें से अच्युत सवितर्क ध्यान का सुख भोगते हैं, शुद्धनिवास, सविचारध्यानक, सत्यभा, आनंद-मात्रध्यानक और संज्ञासंज्ञिन् अस्मितामात्र ध्यान का सुख भोगते हैं। वे त्रिलोकी के बीच में रहते हैं। यही सप्त लोकों का वर्णन है।

विदेह और प्रकृतिलय नाम के देवता मोक्षपद में हैं। इसलिये वे इन लोकों में नहीं रहते।

परिशिष्ट ७

स्फोटवाद

स्फोट-शब्द स्फुट्-धातु से बना है, जिसका अर्थ फूट निक-लना, स्पष्ट होना आदि है। स्फोट का अर्थ है किसी समूचे पद का एकसाथ शब्द, जिससे उस पद के वर्णों को छोड़कर उसके अर्थ का ज्ञान हो। उदाहरणतः 'जल' एक पद है। इसमें ज, और ल, दो वर्ण हैं। इन वर्णों को छोड़कर यानी उन पर कोई ध्यान न देकर, समूचे पद जल का एकसाथ शब्द, जिससे जल-शब्द का अर्थ समझा जाय, स्फोट है। स्फोट नित्य शब्द है। उसके कोई भाग नहीं हैं। वही सृष्टि-रचना का वास्तविक कारण यानी यह शब्द-ब्रह्म है। यह शब्द सबके ज्ञान का विषय है; क्योंकि सभी मनुष्य 'गो'-शब्द को सुनकर उसका ज्ञान तत्काल ही कर लेते हैं, और जान लेते हैं कि 'गो'-शब्द में 'ग' और 'ओ' वर्ण भिन्न हैं, और गो-शब्द का अर्थ इन वर्णों से भिन्न है। प्रश्न यह है कि जब 'गो' अथवा 'जल'-शब्द अथवा और कोई शब्द बोला गया, तो उसका ज्ञान कैसे होता है? यदि कोई यह कहे कि यह ज्ञान पद के वर्णों से होता है, तो प्रश्न है कि पृथक्-पृथक् वर्ण से होता है कि सब वर्णों को

मिलाने से ? सब वर्णों को एकसाथ लेने से तो यह यों नहीं हो सकता कि जब पहला वर्ण बोल चुकते हैं, तो वह ग़ायब हो जाता है और जब वह ग़ायब हो गया, तो पूरे पद के सब वर्ण एकसाथ कैसे हो सकते हैं ? यदि यह कहो कि पृथक्-पृथक् वर्ण से अर्थ का ज्ञान होता है, तो किसी एक वर्ण में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह पद के अर्थ का ज्ञान उत्पन्न कर दे। जब न तो पृथक्-पृथक् वर्ण पद का अर्थ बता सकता है, और न इन सब वर्णों का इकट्ठा रूप, तो फिर पद का अर्थ कैसे मालूम होगा। इसलिये अवश्य कोई दूसरी चीज़ होगी, जिससे पद के अर्थ का ज्ञान होता है। यह चीज़ स्फोट है, यानी वह शब्द, जो वर्णों से भिन्न है, लेकिन वर्णों द्वारा अभिव्यक्त होता है। नीचे के उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा।

देवदत्त ने रामदत्त से कहा—'जल लाओ'। इस वाक्य में दो पद हैं, एक 'जल' और दूसरा 'लाओ'। प्रश्न है कि रामदत्त इस वाक्य का अर्थ कैसे समझा ? पहले पद जल में ज और ल दो वर्ण हैं, और दूसरे में ल, आ, ओ, तीन वर्ण। रामदत्त को पहले जल-पद का ज्ञान हो जायगा, तब 'लाओ' का होगा। अब यही तो बताना है कि उसे इन पदों के अर्थ का ज्ञान कैसे होगा। देवदत्त जब 'जल'-शब्द बोला, तो पहले ज वर्ण बोला, और फिर ल वर्ण। जब वह

ज बोल चुका, तो ज तो चला गया और ल आया, जो ज से बिलकुल अलग है। क्या ज से पानी का ज्ञान हुआ या ल से। इन दोनो में से किसी वर्ण का अर्थ पानी नहीं है। यदि यह कहो कि ज बोलते ही पानी का ज्ञान हो गया, तो फिर ल बोलने की जरूरत ही क्या है ? और यदि यह कहो कि ज, ल, दोनो वर्णों के बोलने से पानी का ज्ञान हुआ, तो दोनो वर्ण एकसाथ बोले नहीं जा सकते, पहले ज बोला जायगा और फिर ल। जब ल बोला जायगा, तो पहला बोला हुआ ज चला जायगा, केवल ल ही रह जायगा। इसलिये किसी पद के वर्णों में—न अकेले और न दूसरों के साथ में—ऐसी शक्ति है, जिससे पद के अर्थ का ज्ञान हो सके। जैसे जल-शब्द के वर्णों से पानी का ज्ञान नहीं हो सकता, वैसे ही 'लाओ' शब्द के वर्णों से लाने का ज्ञान नहीं हो सकता। "जल लाओ"-वाक्य में जब जल पद बोल चुके, तो वह गायब हो गया, और जब लाओ बोलेंगे, तो उसका पहले पद से कुछ संबंध नहीं रहेगा। यह नहीं मालूम होगा कि क्या लाओ ; क्योंकि जल-शब्द तो पहले बोले जाने के कारण अंतर्हित हो गया है। जैसे जल पद में ज और ल वर्णों से अर्थ का कुछ ज्ञान नहीं होता, वैसे ही 'जल लाओ'-वाक्य में न तो पृथक्-पृथक् पद से वाक्य के अर्थ का ज्ञान हो सकता है, और न दोनो पदों के एक रूप में मिलने से ; क्योंकि

ऐसा मेल हो ही नहीं सकता। जैसे वर्ण, पद में आगे-पीछे के क्रम से हैं, जो उसी क्रम से बोले जा सकते हैं, यानी एक दफ़े एक वर्ण ही बोला जा सकता है, वैसे ही पद वाक्य में आगे-पीछे के क्रम से रहते हैं, यानी एक दफ़ा में एक ही पद का ज्ञान होता है, दो का नहीं।

इसके सिवा दूसरा तर्क यह भी है कि यदि वर्णों में अर्थ बताने की शक्ति होती, तो प्रत्येक वर्ण एक ही अर्थ के लिये निश्चित हो जाता; लेकिन यह बात नहीं है। जल-पद में ज, ल दो वर्ण हैं। यदि ज का अर्थ पानी है, तो जन, जग, जव, जम आदि पदों में भी ज वर्ण आया है, तो वहाँ भी वह पानी का अर्थ देगा; लेकिन यह बात नहीं है। यदि ल का अर्थ पानी है, तो खल, नल, तल, फल आदि पदों में भी ल को पानी का अर्थ बताना चाहिए। यदि यह कहो कि जल के मिलने से ही पानी का अर्थ होता है, तो ये 'लज' इस रूप में भी मिल सकते हैं; लेकिन पानी का अर्थ नहीं होता। इसलिये वर्ण जो सब पदों में अनेक क्रम से मिलते रहते हैं, अर्थ-संपादन में असमर्थ हैं। ऐसी-ऐसी सूक्ष्म बातों की टटोल करने से शास्त्रकारों ने यह निश्चय किया है कि पद के अर्थ का ज्ञान स्फोट से होता है, जो हमारे भीतर एक ऐसी शक्ति है कि उसके द्वारा, जब पद के वर्ण बोले जा चुकते हैं,

तो उसके अर्थ का एकदम से ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। स्फोटवाद मत बहुत पुराना है। पाणिनि के पहले का है। स्फोटायन नाम के एक वैयाकरण पाणिनि के पहले हो चुके थे, जिनका उल्लेख पाणिनि ने अपने व्याकरण में किया है। स्फोटवाद का जिक्र कई शास्त्रों में आया है। कोई शास्त्र इसे मानता है, कोई नहीं।

वेदांत-शास्त्र में शब्दों का नित्य होना तो माना गया है, पर स्फोटवाद नहीं माना है। एक प्राचीन वेदांती यानी उप-वर्ष का मत है कि यह तो माना कि पद के वर्ण बोलने में गायब हो जाते हैं, जैसे ऊपर लिखा जा चुका है; पर ये हमेशा पहचाने जा सकते हैं। जब 'गो'-शब्द को दो बार बोला तो सुननेवाला फ़ौरन् पहचान लेता है कि यह वही शब्द है।,

यदि वेदांत शब्दों का नित्य रूप नहीं मानता, तो वह स्फोट-वाद के विरुद्ध गिना जाता; लेकिन वह शब्दों को नित्य सम-झता है, और स्फोट भी नित्य है, इसलिये यह मत स्फोटवाद का विरोधी नहीं गिना जा सकता।

योगशास्त्र में स्फोटवाद माना गया है। देखो विभूतिपाद का १७वाँ सूत्र, जिसके समझाने के लिये भाष्यकार वेदव्यास और वृत्तिकार वाचस्पति मिश्र ने बड़ी लंबी व्याख्याएँ दी हैं।

सांख्य-शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं समझता। कपिल मुनि कहते हैं कि जैसे वन वृक्षों से पृथक् नहीं है, यानी वृक्षों

के समूह का नाम ही वन है, वैसे ही पद के वर्णों के समूह के लिये स्फोट है। जब वही काम पद से निकल जाता है, तो स्फोट को पृथक् मानना अनावश्यक है। यह स्फोटवाद की दलील मानते हैं; पर स्फोट की जगह पद से ही काम लेना चाहते हैं। इस प्रकार यह भी स्फोटवाद के पूर्ण विरोधी नहीं हैं।

न्याय-शास्त्र शब्द की नित्यता नहीं मानता, इसलिये स्फोट-वाद भी नहीं मानता।

वैशेषिक मत भी यही है।

पूर्वमीमांसा स्फोटवाद मानती है, और शब्दों की नित्यता भी मानती है।

वैयाकरण पाणिनि भी शब्दों की नित्यता मानते हैं, और स्फोटवाद भी मानते हैं।

वेदों को नित्य मानने के लिये शब्द की नित्यता और स्फोट-वाद की आवश्यकता समझी गई है।

पूर्वमीमांसा उत्तरमीमांसा (वेदांत) योगदर्शन पाणिनि-दर्शन	ये चारो शब्द को नित्य मानते हैं, और वेदांत के सिवा तीनो दर्शन स्फोटवाद को भी मानते हैं। ये चारो शब्द को नित्य मानकर वेदों की नित्यता सिद्ध करते हैं।

न्याय और वैशेषिक न शब्द को नित्य मान्ते हैं, और न स्फोटवाद को मानते हैं; पर वेदों की नित्यता अन्य प्रकार से सिद्ध करते हैं। यानी कहते हैं, वेद सब मन्वंतरों और युगों में रहते आए हैं और सृष्टि के आदि में भी उनका आविर्भाव होता है, नए नहीं बनते। इसलिये वे नित्य हैं, और इसमें ऋषियों का आप्त प्रमाण है।

सांख्य-शास्त्र न शब्द को नित्य मानता है, और न वेदों को नित्य सिद्ध करने की आवश्यकता समझता है। यह स्फोट-वाद की भी आवश्यकता नहीं समझता।

स्फोटवाद पर परिशिष्ट देने की यह आवश्यकता है कि योगशास्त्र के विभूति पाद के १७वें सूत्र पर व्यास-भाष्य और वाचस्पति-वृत्ति में स्फोटवाद की पूरी व्याख्या है। इस सूत्र का अर्थ है कि शब्द, अर्थ और प्रत्यय एक दूसरे से मिले रहने से एक मालूम होते हैं; पर हैं वास्तव में पृथक्-पृथक्। इनके भेदों यानी विभागों पर संयम करने से योगी को सब जीवों की बोलियों का ज्ञान हो जाता है।

इस सूत्र पर जो भाष्यकार लिखते हैं, उसका कुछ सारांश नीचे दिया जाता है, जो इस परिशिष्ट के पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा।

शब्द कान से सुनाई देता है—बुद्धि एकदम से उस शब्द को

ग्रहण कर लेती है। शब्द के अक्षर पृथक्-पृथक् बोले जाते हैं, एकसाथ नहीं, इसलिये ये अक्षर एक दूसरे को आश्रय नहीं देते। वे प्रकट होते हैं, और गायब हो जाते हैं, उनका किसी शब्द के साथ संबंध नहीं रहता, न उनके द्वारा शब्द का ज्ञान होता है। इसलिये इन अक्षरों में से कोई भी एक शब्द नहीं हो सकता। अक्षर शब्द का एक भाग है। उसमें सब पदार्थों को नाम देने की शक्ति है। इसलिये उसका प्रयोग विश्व-व्यापी है; क्योंकि वह प्रत्येक मिले अक्षर के साथ मेल करता है। भिन्न-भिन्न समूहों में उसके भिन्न-भिन्न स्थान होते हैं। वह कभी पहले आता है कभी पीछे, कभी किसी दूसरे अक्षर के पीछे। इस प्रकार बहुत-से वर्ण हैं, जो भिन्न-भिन्न क्रम में रक्खे जाने से अर्थ-संकेत से भिन्न-भिन्न शब्द हो जाते हैं। उदाहरणतः गो शब्द में ग, ओ, दो वर्ण हैं। इन वर्णों से अनेक पदार्थों के नाम बन सकते हैं। लेकिन जिस क्रम में ये वर्ण भरे हैं, उससे एक विशेष पदार्थ का ज्ञान होता है जिसके थन वग़ैरह हैं, यानी गाय। एक पद एक बुद्धि विषय है। वह एक प्रयत्न से होता है। उसके भाग नहीं होते। और क्रम भी नहीं है। वह पृथक्-पृथक् वर्णों की पूर्णता नहीं है।